भक्तियोग पर आधारित सरस पुस्तक

सुख की मूल
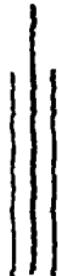
भक्ति तात अनुपम सुख मूला ।
मिलहिं जो संत होइ अनुकूला ।।
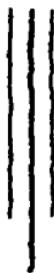
सन् १९७१ 卐 मूल्य १) रु

सारंग-भावना

१. हे भगवान श्रीकृष्ण ! जब तक ये सृष्टि है, तब तक मानव का शरीर देकर मुझे पवित्र भारत भूमि पर भेजते रहना।

२. दीन-दुखियों की सेवा, संत-महात्माओं का संग, भगवन्नाम का स्मरण व भक्ति का प्रचार करते हुए सदाचार पूर्वक रहूँ।

३. भगवती भागीरथी के किनारे हृदय में आपका ध्यान व मुख से संकीर्तन करते हुए इस देह का परित्याग करूँ।

शरणागतवत्सल सुखद; भगतन के प्रतिपाल।
सारंग आयो तव शरण; कृपा करो नन्दलाल॥

* सारंग *

卐 सारंगजी का परिचय 卐

परम पूज्य श्री सारंग जी महाराज बाल ब्रह्मचारी हैं। उत्तरकाशी हिमालय में रहकर आपने माता सरस्वती की आराधना की जिससे आपको बहुत लाभ हुआ। गीता रामायण भगवन्नाम का प्रचार करना ही आपके जीवन का लक्ष्य है। भारतवर्ष के सभी प्रसिद्ध नगरों में आपके द्वारा धर्म प्रचार हो चुका है। आपके द्वारा लिखित श्री "श्री राधेगोविन्दा गोपाला तेरा प्यारा नाम है" नामक भजन तो संपूर्ण भारत में प्रसिद्ध हो चुका है।

श्री सारंग जी द्वारा लिखित प्रथम पुस्तक है—१. सारंग भजन संग्रह। दूसरी पुस्तक का नाम है—२. सुख का मार्ग। तीसरी पुस्तक का नाम है—३. सुख की मूल। चौथी पुस्तक है—मन की शान्ति। पाँचवी पुस्तक है ५. सत्यनारायण भगवान की सत-कथा। छठी पुस्तक है—६. दृष्टि। इन ६ पुस्तकों में से पहली तीन पुस्तकें छप चुकी हैं। बाकी तीन पुस्तकें सन् १९७२ में छपेंगी। प्रत्येक पुस्तक की कीमत एक रुपया है।

श्री सारंग जी महाराज का पवित्र आश्रम जिसका नाम "सारंग सेवा आश्रम" है उत्तरकाशी हिमालय में तपोवन आश्रम के पास ही है। इस आश्रम में विद्वान व विरक्त महात्मा रहते हैं। गर्मी में सारंग जी भी यहीं निवास करते हैं। ऋषिकेश से २०० मील उत्तर में गंगाजी के किनारे विश्वनाथ जी की प्रिय नगरी उत्तरकाशी है। उत्तरकाशी से एक मील आगे उजेली नामक स्थान पर संतों के प्राचीन आश्रम हैं।

—: कमलनयन :—

卐 मंगलाचरण 卐

यच्चिन्तनं यत्स्मरणं यदर्चनं
यत्कीर्तनं यत्कथनं यदीक्षणम्
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः

जिन भगवान श्री कृष्णचन्द्र का चिन्तन, स्मरण, अर्चन, कीर्तन व दर्शन संसार के समस्त पापों को धो देता है उन्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है।

आदि पुरुष परमात्मा; तुम्हें नवाऊँ माथ।
चरनन पास निवास दें, कीजे मोहि सनाथ ।।
किरपा करो अनाथ पर, तुम हो दीनानाथ।
हाथ जोड़ माँगू यही, मम सिर तुम्हरो हाथ ।।

सारंग

卐 सेठ भगवानदास का जन्म दिन 卐

बम्बई में समुद्र के किनारे सेठ भगवानदास की कोठी है जिसमें मखमली गलीचे पर रेशमी तकिये के सहारे सेठ भगवानदास बैठे हैं। आज इनका जन्म दिन है। इनके मित्र इनके पास आकर इनको बधाई दे रहे हैं।

टन-टन-टन करके घड़ी ने सुबह के आठ बजाये। सेठ भगवानदास ने रेडियो चालू कर दिया। सवा आठ बजे तक हिन्दी में समाचार सुने। उसके बाद रेडियो ने ऐलान किया—अब आप भक्त सूरदास जी का एक भजन सुनिये—

गाफिल तुझे घड़ियाल ये देता है मनादी।
गरदूँ ने घड़ी उम्र की इक और घटादी॥

जा दिन मन पंछी उड़ी जै हैं।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जै हैं॥

घर के कहिहैं बेगहि काढ़ो, भूत भये कोउ खै हैं।
जा प्रतिमओं प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरै हैं॥

कहाँ वह ताल कहाँ व शोभा; देखत धूरि उड़ै हैं।
भाई बन्धु कुटुंब कबीला, सुमिरि सुमिरि पछितै हैं॥

बिनु गुपाल कोऊ नहिं अपनो, जस कीरति रहि जै हैं।
सो तो सूर दुर्लभ देवन को, सत्-संगति में पै हैं॥

रेडियो में आने वाले सूरदास जी के भजन को सुनकर सेठ भगवानदास अपने मन में विचार करने लगे—दुनियाँ का भी कैसा उलटा रिवाज है ? लोग मुझे बधाई देने आ रहे हैं जबकि मेरी उम्र का आज एक साल और कम होगया है।

मेरी आयु ४५ साल की होगई है। ५ साल की उम्र तक तो मैं खिलोनों से ही खेलता रहा। २० साल की उम्र तक मैंने विद्याभ्यास किया। पाँच साल तक दूसरों के पास जाकर व्यापार करना सीखा। २५ साल की उम्र में पिताजी ने मुझे कपड़े की दुकान खुलवादी और मेरा विवाह भी कर दिया। चालीस साल की उम्र तक मैंने बीस लाख रुपये व्यापार द्वारा कमा लिये तथा मेरे पाँच सन्तानें भी होगईं।

आज मेरे पास आलीशान मकान, पतिव्रता पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र, विलायती मोटरें, बीस लाख की मिल, ईमानदार नौकर, जिगरी दोस्त, स्वस्थ शरीर, समाज में सम्मान व लाखों की सम्पत्ति है फिर भी मेरे मनमें शान्ति नहीं है। विषय भोगों में इतना समय निकल गया पर मुझे अभी तक सच्चा सुख नहीं मिला। पूर्ण सुख प्राप्त करने के लिये मुझे क्या करना चाहिए।

दिन भर सेठ भगवानदास इसी प्रकार के विचार करते रहे। शाम को ६ बजे उनकी धर्मपत्नी रामदेवी ने उनके पास आकर कहा—आज एकादशी का शुभ दिन है और आपका जन्म दिन भी है। कृपा करके आज आप मेरे साथ चर्चगेट ही रोड पर तुलसी निवास में सत्संग सुनने चलिये। स्वामी शारदानन्द जी महाराज प्रवचन करेंगे।

ठीक ६॥ बजे सेठ भगवानदास तुलसी निवास पहुँच गये। श्रोतागणों से सत्संग भवन खचाखच भरा था। रामदेवी माताओं में व भगवानदास पुरुषों में आकर बैठगये। मंगलाचरण में श्रीमद्भागवत का श्लोक बोलने के बाद स्वामी शारदानन्द जी ने अपना प्रवचन आरंभ करते हुए कहा—

सुख प्राप्त करने के लिये यह मनुष्य अनेक प्रकार के मनमाने उपाय करता है फिर भी इसे पूर्ण सुख नहीं मिलता। भगवान श्रीराम ने एक बार अपनी प्रजा को अपने पास बुलाकर सुखदाई वस्तु का बोध कराया। भगवान ने अयोध्या वासियों को जिस मूल बात को अपने हृदय में धारण करने को कहा वही सुख की मूल बात मैं आपको बतलाता हूँ—

एकबार रघुनाथ बोलाए। गुरु द्विजपुरवासी सब आये॥
बैठे गुरु मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भय भंजन॥

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहिं सोहाई॥

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधनधाम मोक्षकर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥

सो परत्र दुःख पावइ, सिर धुनिधुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाइ॥

प्रिय प्रजाजनो ! ये मनुष्य का शरीर बड़े भाग्य से मिला है । देवता लोग भी इस शरीर को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं । मानव देही के अतिरिक्त अन्य जितने भी पशु-पक्षी आदियों के देह हैं वे सब भोग योनियाँ कहलाती हैं । उन शरीरों से ये जीव कुछ भी साधना नहीं कर सकता है । इस जीवात्मा को परमात्मा तक पहुँचाने वाली नसैनी ये मानव देही है । मोक्ष के द्वार-रूप इस नर शरीर को प्राप्त करके सच्चा सुख प्राप्त करने के लिये साधना करना चाहिये ।

जब तक ये प्राणी परम पिता परमात्मा का ज्ञान प्राप्त नहीं करेगा तब तक दुःखी ही रहेगा । ईश्वर का ज्ञान अन्य योनियों में नहीं हो सकता । अच्छा भोजन, मीठी नींद, भोगों का सुख व सन्तान की प्राप्ति तो गाय-बैल घोड़ा गधा आदि पशु योनी में भी हो जाती है । मनुष्य का शरीर पाकर भी इन्हीं पदार्थों की प्राप्ति में लगे रहेंगे तो फिर इस देही की विशेषता क्या रहेगी । इस शरीर को पाकर आजीवन भोगपदार्थों का संग्रह करना अमृत के बदले जहर पीना है ।

एहि तन कर फल विषय न भाई । स्वर्गउ स्वल्प अंत दुःखदाई ।।
नर तन पाइ विषय मन देहीं । पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं ।।
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई । गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई ।।
आकर चारि लच्छ चौरासी । जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा । काल कर्म सुभाव गुन घेरा ।।
कबहुँक करि करुना नर देही । देत ईश बिनु हेतु सनेही ।।

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ ।
सो कृत निंदक मंद मति आत्माहन गति जाइ ।।

सिन्ध का एक व्यापारी अपने परिवार को हैदराबाद शहर में छोड़कर जापान चला गया। वहाँ पर उसका व्यापार बहुत अच्छा चला और वह सात साल तक भारत नहीं आ सका। उसकी पत्नी व पुत्र उससे मिलने के लिये तड़प रहे थे। हर पत्र में वे यह ही लिखते थे—हमें भी अपने पास बुलालो।

व्यापारी भी अपनी स्त्री व पुत्रों को अपने पास बुलाना चाहता था इसलिये उसने २०००) रु. का चैक उनके पास भेज दिया और लिख दिया कि पानी के जहाज में बैठकर मेरे पास आजाओ। उसने पत्र में अपने मकान का पता भी लिख दिया था। रुपये मिलने के एक सप्ताह बाद ही दोनों माँ बेटे जापान के लिये रवाना होगये।

कुछ ही दिनों में वे जापान पहुंच गये परन्तु जहाज में असावधानीपूर्वक रहने से किसी ने उनकी पेटी चुराली। जिसमें पहनने के कपड़े, २००) रु. व जापान के मकान का पता था। पता गुम होने से वे दर दर की ठोकरें खाने लगे। दो दिन तक भूखे प्यासे भटकते रहे। तीसरे दिन एक ठेकेदार के पास आकर अपना दुःख सुनाया।

ठेकेदार एक मकान बना रहा था जहाँ बीस मजदूर रोज काम करते थे। उसी मकान के एक कमरे में इनके ठहरने की व्यवस्था करदी तथा दोनों को मजदूरी पर लगा दिया। दिन भर माँ-बेटे सिर पर तगारी ढोते। रोज शाम को लड़का अपने पिता का मकान ढूंढने जाता था। इस तरह मजूरी करते उनके पाँच दिन बीत गये।

प्रत्येक रविवार को छुट्टी के दिन मकान मालिक अपना मकान देखने आया करता था। ठेकेदार ने उन माँ बेटों से कहा— आज तुम अपना मकान ढूंढने मत जाना। आज इस मकान का मालिक आने वाला है। वह भी हिन्दुस्तानी है और बहुत ही दयालु है, मैं तुमको उससे मिला दूंगा, वह तुम्हारी अवश्य सहायता करेगा। ठेकेदार की बात मानकर उस दिन वे माँ बेटे कहीं नहीं गये।

दिन के ग्यारह बजे के करीब मकान मालिक अपना मकान देखने आया। जब वह मकान देख चुका तब ठेकेदार ने कहा— हुजूर! एक बेटा अपनी माता के साथ अपने पिता के पास हिन्दुस्तान से आया है। जहाज में उनके सामान की चोरी होगई जिसमें उसके पिता का पता भी था। बिना पते के बेचारे कहाँ जावें? पाँच दिन से यहाँ मजूरी कर रहे हैं। कृपा करके आप उनकी कुछ मदद करिये।

ठेकेदार की बात सुनते ही मकान मालिक उसके साथ उस कमरे में गया जिसमें वे माँ-बेटे रहते हुए थे। पत्नी ने अपने पति को देखते ही पहचान लिया व बेटे से कहा—ये ही तेरे पिता हैं। पिता ने भी आगे बढ़कर पुत्र को हृदय से लगा लिया। ठेकेदार समझ गया कि हमारे मकान मालिक ही इसके पिता हैं।

इसी दृष्टान्त के अनुसार परमेश्वर ने जीव को कृपा करके यह मानव शरीर अपने से मिलने को दिया है। काम क्रोध रूपी चोर इसके मनको चुरा लेते हैं। गुरुदेव की शरण में जब ये जाता है तब वे इसे परमेश्वर से मिला देते हैं। परमेश्वर से मिलते ही जीव सुखी हो जाता है।

卐 सुख देने वाली वस्तु तो भक्ति ही है। 卐

प्रिय सज्जनो ! इतनी बात सुनकर आप यह तो समझ ही गये हैं कि यह मानव शरीर हमें परमात्मा की प्राप्ति के लिये मिला है। अब आपके मन में यह बात होगी कि परमात्मा की प्राप्ति के लिये हमें सर्व प्रथम कौनसा साधन करना चाहिये ?

इसके लिये भी भगवान श्रीराम ने अपने प्रजा को जो साधन बतलाया था वही आप भी करिये। इस लोक और परलोक में सुख देने वाला व साधना करने में सुलभ वह मार्ग है—भक्तियोग जो संतों की कृपा से सत्संग द्वारा प्राप्त होता है।

जो परलोक यहाँ सुख चहहू। सुनि मम वचन हृदय दृढ़ गहहू ॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई ॥
भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलहिं जो संत होइं अनुकूला ॥
भक्ति सुतंत्र सकल सुखखानी। बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी ॥

आप लोग कभी कभी सत्संग में आते हैं। नित्य सत्संग करने वाले को परमेश्वर की प्राप्ति शीघ्र ही हो जाती है। प्रति दिन सत्संग उन्हीं को प्राप्त होता है जो पुण्यात्मा है। वैसे तो संसार में अनेक प्रकार के पुण्य कर्म हैं। पर सबसे श्रेष्ठ पुण्य है—ज्ञानवानों की सेवा।

पुण्यपुंज बिनु मिलहिं न संता। सत संगति संसृति कर अंता।
पुण्य एक जग में नहिं दूजा। मन वचन कर्म विप्रपद पूजा ॥
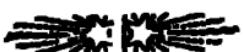
जो सत् स्वरूप परमात्मा के प्रभाव व महत्व को जानते हैं। जो सदाचार पूर्वक रहते हैं तथा दूसरों को सत् मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। जिनको सत्य का पूर्ण ज्ञान है। तन, मन व वचन से दूसरों का हित करना ही जिनका सहज स्वभाव है। जिनका हृदय मक्खन के समान उज्ज्वल व कोमल है। जिनके चित्त में मद और मोह नहीं हैं। जो सदा समता को अपनाये रहते हैं। जिनके दर्शन करने से पाप नष्ट हो जाते हैं। पुण्यों के फल स्वरूप जिनका दर्शन होता है। ऐसे विश्व सुखद संतों की सेवा करना ही भक्ति योग का प्रथम साधन है। ऐसे संतों की सेवा व सत्संग बड़े भाग्य से मिलते हैं—

संत उदय संतत सुखकारी। विश्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥
सरदातम निसि ससि अपहरई। संतदरस जिमि पातक टरई॥

पर उपकार वचन मन काया। संत सहज स्वभाव खगराया॥
संत ? सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्ह की करनी॥

सरदातम निसि ससि अपहरई। संत दास जिमि पातक टरई॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तों;
वसन्तवल्लोक हिता चरन्तः।
तीर्णा-स्त्यं भीम भवार्णं वंजनानुं;
अहेतु नान्यानपि तारयन्तः॥

कहा भयो नृपहू होवत जग बेगार।
लेत न सुख हरि भगति को, सकल सुखन को सार॥

एकादशी के दिन सत्संग में स्वामी शारदानन्दजी के मुख से बातें सेठ भगवानदास ने सुनी उनको सुनकर उसे बहुत आनन्द आया। वह दूसरे दिन भी रामदेवी के साथ सत्संग में गया। आज स्वामी शारदानन्दजी ने कहा—

भगवान शंकराचार्य जी कहते है कि—मोक्षकारण सामग्र्या भक्तिरेव गरीयसी। मोक्ष प्राप्ति के तमाम साधनों में एक भक्ति ही श्रेष्ठ है।

पाराशर मुनी कहते हैं कि—पुजादिषुअनुरागः। पूजादि में अनुराग होना ही भक्ति है।

गर्गाचार्य कहते हैं कि—कथादिषु अनुरागः। कथा में प्रेम होना ही भक्ति है।

शाण्डिल्य ऋषि करते हैं कि—आत्मरति अवरोधनः। आत्मानन्द के अनुकूल जो उपाय हों उन्हें भक्ति कहते हैं।

भास्यकार का कहना है कि—परमेश्वर विषय कान्तः करण वृति विशेष एवं भक्ति। परमेश्वर में हार्दिक अनुराग का होना ही भक्ति है।

देवर्षि नारदजी कहते हैं कि—तत् अर्पित् अखिल आचारात् तत् विस्मरणे परम् व्याकुलता। सम्पूर्ण कर्म भगवान के अर्पण करना तथा भगवान के विस्मरण में परम व्याकुल हो जाना ही भक्ति है।

परन्तु सभी विद्वान इस बात को स्वीकार करते हैं कि सबसे अधिक स्नेह भगवान में होना ही भक्ति है—

"सर्वास्मात् अधिकः स्नेहो भक्तिः इति उच्यते बुधैः"

।। आत्मानुसारिणी बुद्धिः भक्तिरित्यभिधीयते ।।

वेदान्त शास्त्र कहता है कि परमात्मा को जानने के लिये बुद्धिवृत्ति जो आत्मा की ओर धावित होती है उसे भक्ति कहते हैं। इस भक्ति का उदय परोक्षज्ञान से होता है। यह भक्ति दो प्रकार की होती है—(१) हेतुकी भक्ति। (२) अहेतुकी भक्ति।

१, जगत के किसी भी पदार्थ की इच्छा से जो की जाती है उसे हेतुकी भक्ति कहते हैं जैसे उच्च पद प्राप्ति की इच्छा से ध्रुव ने नारायण का ध्यान करते हुए अति कठिन तप किया। बालि के वध की इच्छा से सुग्रीव ने रामजी से मित्रता की। लंका के राज्य की इच्छा से विभीषण रामजी की शरण में आया था।

२. किसी भी पदार्थ की इच्छा नहीं रखकर परमेश्वर से जो प्रेम किया जाता है उसका नाम अहेतुकी भक्ति है। भक्त प्रहलाद, मीराबाई, रामकृष्ण परमहंस आदि भक्तों ने अहेतुकी भक्ति ही की थी। अनेकों संकट आने पर भी इन भक्तों ने भक्ति नहीं छोड़ी।

कहीं कहीं शास्त्रों में (१) पराभक्ति (२) अपराभक्ति इन दो नामों से भी भक्ति का वर्णन किया गया है। जिसमें लक्ष्य की प्राप्ति के सिवाय किसी साधन की आवश्यकता नहीं रहती उसे पराभक्ति कहते हैं। तथा जिसमें भक्ति प्राप्त करने के साधनों की आवश्यकता रहती है उसे अपराभक्ति कहते हैं। मोक्ष देने वाली इस अपराभक्ति को वेदों ने तीन भागों में विभक्त किया है—१. कायिक भक्ति २. वाचिक भक्ति ३. मानसिक भक्ति।

।। त्रेधा भक्तिर्निगम विहिता केशवे मोक्ष हेतुः ।।
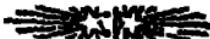
द्वादशी को भी सेठ भगवानदास को सत्संग में पहले से भी अधिक आनन्द आया। उसने रोज सत्संग में आने का मन ही मन निश्चय कर लिया। तीसरे दिन तेरस को स्वामी शारदानन्द जी ने भक्ति के साधन बतलाने से पहले प्रमाण रूप में रामायण की ये चौपाइयाँ बोली—

भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहि प्रानी॥
प्रथमहि विप्रचरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥
एहि कर फल पुनि विषय विरागा। तब मम धर्म उपज अनुराग॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जाने दृढ़ सेवा॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बहे नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरंतर बस मैं ताके॥

वचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निष्काम।
तिनके हृदय कमल महुँ करउँ सदा विश्राम॥

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन कर संगा। दूसरी रति मम कथा प्रसंगा॥

गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥

मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकाशा॥
छठ दम सील विरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातँव सम मोहिमय जग देखा। मोतें अधिक संत करि लेखा॥
आठँव यथा लाभ संतोषा। सपनेहु नहि देखइ पर दोषा॥
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना॥

यह नवधा हरि भगति है तरिनी पाप पवाँल।
मार्ग यही सबसे सुखद नाशिनी क्लेश कराल॥

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम् ॥

(१) भगवान के गुणों को सुनना (२) भगवान के गुणों का व नामों का संकीर्तन करना (३) भगवान को मन ही मन याद करते रहना (४) भगवान की मूर्ति के चरणों पर तुलसी चढ़ाकर प्रणाम करना (५) विधिपूर्वक भगवान की पूजा करना (६) भगवान के सामने साष्टांग दंडवत नमस्कार करना (७) अपने को भगवान का सेवक समझकर मंदिर में झाड़ू लगाना, भगवान के लिये जल भरना, प्रसाद तैयार करना आदि सेवा करना (८) भगवान को अपना मित्र समझकर उनकी कृपा पर सदा विश्वास रखना। (९) अपने आपको तन मन वचन से भगवान के समर्पण करके शरणागत वत्सल भगवान के भरोसे निश्चिन्त रहना। ये नौ प्रकार की भक्ति श्रीमद्भागवत महापुराण में लिखी है।

(१) श्रवण—(२) कीर्तन (३) विष्णु का स्मरण (४) पाद सेवन (५) अर्चन (६) वन्दन (७) दास भाव (८) सखा भाव (९) आत्म निवेदन।

श्री विष्णोः श्रवणे परीक्षिद भवद् वैयासकिः कीर्तने।
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रि भजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने ॥
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येथ सख्ये सख्येऽर्जुनः।
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिर भूतकृष्णाप्तिरेषां परम् ॥

भगवान के गुणों को सुनने में परीक्षित, कीर्तन में शुकदेवजी, स्मरण में प्रह्लाद जी, पाद सेवन में लक्ष्मी जी, पूजन में महाराजा पृथु, वन्दन में अक्रूर जी, दास्य में हनुमान जी, सख्य में अर्जुन और सर्वस्व आत्मसमर्पण में राजा बलि विशिष्ट हुए। भगवान कृष्ण की प्राप्ति ही इन सबका परम लक्ष्य था।

राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर॥
परम प्रकाश रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥
गरल सुधा सम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
व्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुःखारी॥
राम भगति मनि उरबस जाके। दुःख लव लेस न सपनेहुं ताके॥

राम नाम मनि दीप धर जीभ देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरैं जो चाहत उजियार॥

गोविन्द की भक्ति करने वाले मनुष्य के शरीर में गंगा, गया, नैमिषारण्य, पुष्कर, काशी, प्रयाग, और कुरुक्षेत्र भक्ति-पूर्वक निवास करते हैं। गोविन्द की भक्ति करने वाले मनुष्य को देवता भी हर्षित होकर शान्ति देते हैं, ब्रह्मा आदि रक्षा करते हैं तथा बड़े बड़े मुनिगण कल्याण प्रदान करते हैं। परम निर्धन होने पर भी वे धन्य हैं जिनके हृदय में भगवत् भक्ति का निवास है क्योंकि भक्ति सूत्र में बंधकर भगवान भी भक्तों के हृदय में निवास करते हैं।

गंगा गया नैमिष पुष्कराणि; काशी प्रयागः कुरुजांगलानि।
तिष्ठन्ति देहे कृत :भक्ति पूर्व, गोविन्द भक्ति वहतां नराणाम्॥
कुर्वन्ति शांति विबुधाः प्रहृष्टा; क्षेमं प्रकुर्वन्ति पिता महाद्याः।
स्वस्ति प्रयच्छन्ति मुनीन्द्र मुख्या; गोविन्द भक्ति वहतां नराणाम्॥

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का,
कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनम्।
वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्,
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैः भक्ति प्रियो माधवः

व्याध का क्या आचरण था ? ध्रुवकी अवस्था ही कितनी थी ? गजराज में कौनसी विद्या थी ? कुब्जा में ऐसा क्या सौन्दर्य था ? सुदामा के पास क्या धन था। विदुर का कौनसा उत्तम कुल था ? यादवपति उग्रसेन में कहाँ का पुरुषार्थ था ? भगवान को तो भक्ति ही प्रिय है वे केवल भक्ति से ही संतुष्ट होते हैं अन्य गुणों से नहीं।

सुन खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई॥
ते सठ महासिन्धु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥
भक्ति हीन विरंचि किन होई। सब जीवों सम प्रिय मोहिं सोई॥
भक्तिवन्त अति नीचौ प्राणी। मोहिं परम प्रिय सुन मम बाणी॥

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥

हे उद्धव ! जैसा मैं अपनी निष्कपट भक्ति से प्राप्त होता हूँ वैसा न योग से, न सांख्य से, न धर्म से, न स्वाध्याय से, न तप से, न त्याग से ही मिलता हूं।

भक्तिः शान्तिः रूपा परमानन्द स्वरूपा च अतोऽपि सुलभैव।

देवर्षि नारद कहते हैं कि भक्ति शान्तिरूप और परम आनन्दस्वरूप है और भक्ति की साधना भी अत्यन्त सुलभ है। परमेश्वर में पूर्ण अनुराग होना ही भक्ति है।

卐 भक्तिः भगवति चितैकतानता 卐

सर्वेरसाश्च भावाश्च तरंगा एव वारिधौ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र स प्रेम संज्ञकः॥

ये तो आप समझ ही चुके हैं कि सबसे अधिक स्नेह परमेश्वर में होना ही भक्ति है। इसका दूसरा नाम है प्रेम। नारदजी कहते हैं कि प्रेम का स्वरूप वाणी द्वारा नहीं बताया जा सकता—

* अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम् *

किसी के रूप या गुण को देखकर उस पर आसक्त हो जाना और उसकी इच्छा करना इसका नाम प्रेम है। गूंगा आदमी जैसे गुड़ के स्वाद का अनुभव करता है पर दूसरे को बता नहीं सकता इसी प्रकार प्रेम में जो आनन्द है उसका अनुभव प्रेमी ही कर सकता दूसरा नहीं।

प्रेम दो प्रकार का होता है—१. लौकिक प्रेम २. पारलौकिक प्रेम। लौकिक प्रेम सांसारिक सुख की इच्छा से किया जाता है तथा पारलौकिक प्रेम परमेश्वर से सम्बन्ध रखने के लिये किया जाता है। शास्त्र में इस प्रेम का अखण्ड रूप बतलाया गया है। सच्चे प्रेम में कभी भी कमी नहीं आती। लौकिक प्रेम में वासना पूर्ति होने पर कुछ आनन्द मिलता है वह क्षणिक है उसे काम कहते हैं परन्तु भगवत्प्रेम सदा एक रस रहता है।

प्रेम हरी का रूप है; वे हरि प्रेम स्वरूप।
एक होंय दो में लखैं ज्यों सूरज और धूप॥

देवर्षि नारद जी कहते हैं कि अगर आप भगवान से सच्चा स्नेह करना चाहते हो तो गोपियों के समान स्नेह करो—यथा व्रजगोपिकानाम्

श्यामसुन्दर के सखा उद्धव के मुख से जब श्री राधिका जी ने ये सुना कि श्री कृष्ण ने कुब्जा को अपना लिया है तब वे उद्धव से बोली—

जो हरि मथुरा जाय बसे, हमरे जिय प्रीत बनी रहे सोऊ।
ऊधो बड़ा सुख ये ही हमें, नीके रहैं वे मूरति दोऊ॥
हमरे हि नाम की छाप परी, अरू अन्तर बीच अहे नहीं कोऊ।
राधा कृष्ण सभी तो कहेंगे, पर कुबरी कृष्ण कहे नहीं कोऊ॥

महात्मा चरणदास जी कहते हैं कि—

सब मत अधिकी प्रेम बतावे। योग युगत सूं बड़ा दिखावे॥
प्रेमहि से उपजै वैराग। प्रेमहि से उपजै मन त्याग॥
प्रेम भक्ति से उपजै ज्ञाना। होय चाँदना मिटै अज्ञाना॥
दुर्लभ प्रेम जो हाथ न आवे। हरि किरपा करि दें तो पावै॥
प्रेम भक्ति के वश भगवाना। सकल शास्तर कियो बखाना॥

प्रेम बराबर योग ना, प्रेम बराबर ज्ञान।
प्रेम भक्ति बिना साधवा, सबहि थोथा ध्यान॥

भगवान कहते हैं कि मेरे भक्त मेरी सेवा के अतिरिक्त १. सालोक्य, २. सायुज्य, ३. सामीप्य, ४. सारूप्य, ५. कैवल्य पद आदि किसी भी प्रकार की मुक्ति मेरे दिये जाने पर भी गृहण नहीं करते।

सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृण्हन्ति बिना मत्सेवनं जनाः॥

नीर बिनु मीन दुःखी, क्षीर बिनु शिशु जैसे।
पीर की औषधि बिनु, कैसे रह्यो जात है॥
चातक ज्यों स्वाति बूँद, चन्द को चकोर जैसे।
चन्दन की चाह करि, सर्प अकुलात है॥
निर्धन ज्यों धन चाहे, कामिनी को कान्त चाहे।
ऐसी जाके चाह, ताहि कछू ना सुहात है॥
प्रेम को प्रवाह ऐसो, प्रेम तहाँ नेम कैसो।
सुन्दर कहत यह, प्रेम की ही बात है॥

इस प्रेम के रहस्य को गोपियाँ भली प्रकार जानती थी। इसलिये उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि हम सब कुछ छोड़ सकती हैं पर श्रीकृष्ण का स्नेह नहीं त्याग सकती—

घर तजौं बन तजौं, नागर नगर तजौं।
बंसीवट तजौं, काहू पै न लजिदौं॥
गेह तजौं देह तजौं, नेह कहो कैसे तजौं।
आज काज राज बीच ऐसे साज सजिदौं॥
बावरो भयो है लोक, बावरी कहत मोकों।
बावरी कहत मैं काहू ना बरजिहों॥
कहैया सुनैया तजौं बाप और भैया तजौं।
दैया तजौं भैया पर कन्हैया न तजिहौं॥

नारायण यह प्रेम रस, मुखसों कह्यो न जात।
ज्यों गूँगा गुड़ खात है, सैनन स्वाद बताय॥
जा घर प्रेम न संचरे, सो घर जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, स्वास लेत बिनु प्रान॥

१. पूर्वराग २. मिलन ३. बिछोह ।

१. पूर्वराग—प्रियतम के मिलन से पहले चित्त की जो अवस्था होती है इसका नाम पूर्वराग है। इस अवस्था में मन अपने प्यारे से मिलने के लिये तड़फता है। दिन रात प्रीतम का ही ध्यान, प्रियतम का ही चिन्तन व प्रियतम की ही चर्चा सुहाती है। प्रेम की इस दशा में वैराग्य हो जाता है। शरीर को भोग सुख, घर द्वार, मान सम्मान आदि कुछ भी अच्छे नहीं लगते। इस अवस्था में अपने प्रियतम को दर्शन देने के लिये मार्मिकता के साथ प्रार्थना की जाती है—

कभी तप और कभी संध्या कभी व्रत नेम और संयम।
तेरे मिलने को मैं लाखों ढंग ईजाद करता हूं॥
किसी भी अब पदारथ की मुझे परवाह नहीं दाता।
मैं दुनियाँ भूल जाता हूं तुम्हें जब याद करता हूं॥

॥ अम्मा मेरा दिल लगा मुझसे रहा न जाय ॥

मुझसे रहा न जाय बिना साहब को देखे।
जान तसद्दुक करूँ लगै साहिब के लेखे॥
मुझको भया है रोग जायगा जीव हमारा।
एकर दारु यही मिले जब प्रीतम प्यारा॥
पड़ा प्रेम जंजाल जिकर सीने में लागी।
मैं गिरपड़ी बेहोश लोक की लज्जा भागी॥
पलटू सतगुरु वैद बिन कौन सकै समझाय।
अम्मा मेरा दिल लगा मुझसे रहा न जाय॥
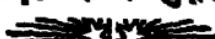
कहा करौं वैकुण्ठ ले कल्पवृक्ष की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावने जो प्रीतम गल बाँह ॥

२. मिलन—प्रेमी को अपने प्रियतम से मिलने में जो सुख प्राप्त होता है उसका वर्णन वाणी द्वारा कैसे किया जा सकता है। इसका वास्तविक आनन्द तो प्रेमी ही जानता है। दो प्रेमियों के परस्पर मिलने का वर्णन भक्त रसखान जी ने इस प्रकार किया है—एक सखी दूसरी सखी से श्री राधिका जी व श्रीकृष्ण के मिलन का वर्णन करती हुई कहती है—

ए री ! आज काल्ह सब लोक लाज त्यागि दोऊ।
सीखे हैं सबै विधि स्नेह सरसायबो ॥
यह रसखान दिन दो में बात फैलि जैहैं।
कहाँ लौं सयानी ? चन्द हाथन छिपायबो ॥
आज हों निहारयो वीर, निपट कालिन्दी तीर।
दोउन को दोउन सों मुख मुसकाइबो ॥
दोउ परैं पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैयाँ।
उन्हें भूल गैयाँ, इन्हें गागर उठायबो ॥

—: मिलन की विनय :—

पहिरे ये कुण्डल यूं ही रहो अलकावलि यूं ही सँवारे रहो।
अधरामृत पान रचाते हुए कर कुंज में मुरली धारे रहो ॥
नहीं और विशेष करो कुछ तो अन्यारे दृगों से निहारा करो।
अब मोहन छोड़ न जावो हमें बन जीवन प्राण अधार रहो ॥

भक्ति ग्रंथों में आठ सात्विक भावों का वर्णन है—१. स्तम्भ २. कम्प ३. स्वेद ४. वैवर्ण्य ५. अश्रु ६. स्वर भंग ७. पुलक ८. प्रलय। इन आठ भावों का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है—

स्तम्भ—मन और इन्द्रियों का चेष्टारहित होना।

कम्प—शरीर में कँपकँपी पैदा होना।

स्वेद—शरीर में से पसीना छूटना।

वैवर्ण्य—मुख पर उदासी का फीकापन आजाना।

अश्रु—आँखों की कोर से शीतल जल का निकलना।

स्वरभंग—मुख से अक्षर स्पष्ट उच्चारण न हो।

पुलक—शरीर के सम्पूर्ण रोमों का खड़े हो जाना।

प्रलय—शरीर का ज्ञान न रहना; बेहोश होजाना।

तुम्हारे इश्क ने मुझको सिखाई तीन बातें हैं।
कभी हंसना कभी रोना कभी बेहोश होजाना॥

प्रेम दिवाने जे भये; कहैं बहकते बैन।
सहजो मुख हाँसी छुटै; कबहूँ टपकै नैन॥

प्रेम दिवाने जो भये; डगमगात सब देह।
पाँव परै कितको कितै; हरि सम्हाल झट लेय॥

卐 बिरह की तीन दशाएँ 卐

१. भावी बिरह २. वर्तमान बिरह ३. भूत बिरह ।

भावी बिरह—प्रियतम कल चले जायँगे। इस भाव के उदय होते ही कलेजे में जो ऐंठन होने लगती है उसी ऐंठन का नाम भाव विरह है। श्रीकृष्ण के मथुरा गमन का समाचार सुनकर गोपियों की यही हालत हो गई थी। वे रात्री में प्रार्थना करती हैं—

सजन सकारे जायँगे नैन परेंगे रोय।
विधना ऐसी रैन कर भौर कबहुँ नहीं होय ॥

वर्तमान बिरह—जो अब तक मेरे साथ रहा। जिसके साथ रहकर नाना प्रकार के सुख भोगे वही अब जाने के लिये तैयार खड़ा है। ये बात सोचते समय हृदय में सुइयाँ चुभने के समान जो वेदना होती है उसे वर्तमान विरह कहते हैं।

प्रीतम प्रीत लगाइके दूर देस मत जाय।
रहो हमारे गाँव में मैं मांगू तुम खाय ॥

भूत बिरह—प्रियतम चला गया अब उससे फिर कब मिलन (मुलाकात) होगा। प्यारे के मिलन की इस आशा का ही नाम भूत विरह है।

इन तीन दशाओं में अतिरिक्त विरह की दशाएँ इस प्रकार हैं—१. चिन्ता २. जागरण ३. उद्वेग ४. कृशता ५. मलिनता ६. प्रलाप ७. उन्माद ८. व्याधि ९. मोह १०. मृत्यु।

कागा सब तन खाइयो मत खइयो मेरी आँख।
अजहूँ नैना करत है कृष्ण दरस की आंस ॥

भगति तात अनुपम सुख मूला।
मिलहिं जो संत होई अनुकूला ॥

इस चौपाई का तात्पर्य यही है कि अनुपम सुख प्रदान करने वाली जो भगवान की भक्ति है वह संत महात्माओं की कृपा से ही प्राप्त होती है। इसी चौपाई के आधार पर आपको इस भक्त होथी की प्रेममयी कथा सुनाते हैं—

आज से पाँच सौ साल पहले गुजरात के नेकनाम गाँव में संत मुरार साहेब रहते थे। गाँव के तालाब के पास उनका आश्रम था। प्रतिदिन प्रातःकाल वे श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथा किया करते थे। प्रत्येक एकादशी को रात्री में जागरण होता था जिसमें अति सुन्दर भाव भक्ति से भरे हुए भजन गाये जाते थे।

नेकनाम गांव में जहाँ चार सौ घर हिन्दुओं के थे वहाँ दस घर पठानों के भी थे। पठानों के मुखिया का नाम था-सिकन्दर मिर्जा; जिसके सात साल का एक लड़का था। लड़के की माता गुजर चुकी थी। लड़का देखने में बड़ा सुन्दर व स्वभाव का सरल था। इस होनहार बालक का नाम था—होथी।

हिन्दुओं के बच्चों के साथ खेलते खेलते एक दिन ये बालक होथी मुरार साहेब की कथा में आगया। दूसरे बच्चों की तरह ये भी सबसे आगे जाकर बैठ गया व कथा सुनने लगा। कथा पहले व बाद में मुरार साहेब संकीर्तन कराया करते थे—

❀ राधे कृष्णा ! गोपाल कृष्णा ! ❀

卐 बालक होथी पर सन्त की कृपा 卐

कथा के पीछे जब मुरार साहेब संकीर्तन कराने लगे तब होथी सबसे ऊँची आवाज में संकीर्तन के शब्दों का उच्चारण करने लगा। उसकी ओर प्रेम भरी दृष्टी से देखा—होथी नेत्र बन्द किये बड़ी मस्ती से बोल रहा था—राधे कृष्णा ! गोपाल कृष्णा !

सन्त साहेब ने ही मन ही मन कहा—ये बालक भगवान की भक्ति में लग जावे तो बड़ा अच्छा हो। इसकी मधुर आवाज में आकर्षण है। यदि मैं इसके हृदय में भक्ति का बीज बोदूं तो यह बालक अवश्य एक दिन भक्त बन जायेगा।

सत्संग व संकीर्तन समाप्त होने पर मुरार साहेब ने बालक से पूछा—बेटा ! तेरा क्या नाम है ? बालक ने कहा—होथी! मुरार साहेब ने उसे प्रसाद के रूप में लड्डू दिये और बड़े प्रेम से कहा—बेटा ; रोज आया कर; मैं तुझे खूब प्रसाद दिया करूंगा।

उस दिन से होथी रोज सत्संग में आने लगा। मुरार साहेब भी सत्संग में भगवान श्रीकृष्ण की बाल लीलायें विशेष रूप से कहने लगे जिनको सुन सुन कर होथी के हृदय में भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग होने लगा।

उसने बहुत से भजन भी याद कर लिये थे जिनको वो कभी कभी सत्संग में सुनाया भी करता था। मुरार साहेब उसे रोज प्रसाद देते था उसके सिर पर हाथ रखकर कहते—भगवान तुझे अपने चरणों की भक्ति दे। होथी प्रसाद लेकर प्रसन्नता-पूर्वक अपने घर आ जाता।

एक दिन मुरार साहेब ने प्रातःकाल को कथा में कहा—बृज में गोपी अपने को बहुत चतुर समझती थी। वह अपनी खियों से सदा कहा करती थी कि श्याम सुन्दर मेरे घर माखन ाने आवे तब जानूं। मैं अपना माखन ऐसी जगह छुपा कर ाती हूँ कि चोर के बाप को भी पता नहीं चल सकता।

गोपी की ये बात ग्वालबालों सहित श्रीकृष्ण ने भी सुनली। ूरे दिन जब वह गोपी जमुना पर जल भरने गई थी उस मय मौका देखकर पीछे की ओर बनी रसोई घर की खिड़की श्रीकृष्ण अपनी मण्डली सहित उस गोपी के घर में प्रवेश र गये।

अन्दर जाकर सब ग्वालबाल मक्खन ढूंढने लगे। छत से टकता हुआ छींका खाली पड़ा था। घर में किसी को जरा ी मक्खन नहीं मिला। गोपाल के सब सखा निराश होगये। तने में ही श्रीकृष्ण की दृष्टि एक बड़े मटके पर पड़ी जो एक ोने में औंधा पड़ा था।

श्रीकृष्ण ने अपने सखाओं से कहा—इस मटके के नीचे रूर मक्खन होगा। तुम लोग अपने डंडों से इसे फोड़ डालो। गोपाल के ऐसा कहते ही ग्वालों ने मटका फोड़ डाला। मटका ूटते ही सबने देखा कि मटके नीचे एक काली हांडी में मक्खन भरा हुआ है।

खुशी में भरकर जब ग्वालबाल मक्खन खाने लगे उसी समय गोपी अपने घर आगई। गोपी के डर के मारे सब ग्वालबाल इधर उधर छिप गये। अपने कुरते के नीचे मक्खन की हांडी छिपाकर श्रीकृष्ण भी चुपचाप खड़े हो गये।

जल का घड़ा सिर से उतार कर जैसे ही गोपी मटके वां कमरे में गई वैसे ही मनसुखा को जोर की छींक आगई मटं को फूटा हुआ देखकर गोपी तुरन्त सब बात समझ गई उसं खाट के नीचे छिपे तीन बालकों को भी देख लिया जिनर्क चोटियाँ छेदों में से बाहर निकल रही थीं। परदे के पीछे छिं दोनों बालकों के पैर दिख रहे थे। श्री कृष्ण को देखते ही उसने पूछना शुरू किया। उसके प्रत्येक सवाल का जवाब श्रीकृष्ण बड़ी खूबी से दे रहे थे—

तूँ कौन है ? मैं नन्दसुत। यहाँ किसलिये आया ?
माँ ने मारा तेरे घर छुपने को आया ॥
ये कुरते के नीचे तैंने क्या छुपा रखा है ?
ये तेरा ही मक्खन है बिल्ली से बचा रखा है ॥
एक एक करके टाँग भुजा सबकी नजर आई।
बोली कि ये ग्वालों की पलटन किसके साथ में आई ॥
कृष्ण बोले ये ग्वालों की पलटन मेरे साथ में आई।
तूँ कहदे मुझे चोर तो ये देंगे गवाही ॥

कृष्ण की बात सुनकर गोपी को बहुत हँसी आई। उसने प्रेम से कहा—हे श्याम सुन्दर ! ये सब मक्खन तू अपने सखाओं के साथ आराम से बैठकर खाले। तेरी साँवली सूरत पर तो सारे बृज को मक्खन न्यौछावर कर देना चाहिये। आज मेरा घर पवित्र होगया। अपनी सखियों से तो मैं ऊपर के मन से ही बातें करती थी अन्दर से तो मैं सदा ही चाहती थी कि तुझे जी भरकर मक्खन खिलाऊँ। तू तो अंतर्यामी है। आज मेरी इच्छा पूर्ण होगई।
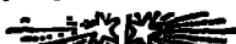
श्रोत्रेण श्रवणं तस्य, वचसा कीर्तनं तथा।
मनसा मननं तस्य, महासाधन मुच्यते ॥

शिवपुराण में लिखा है कि—१. कान से भगवान के नाम, गुण और लीलाओं का श्रवण। २. वाणी द्वारा उनके कीर्तन तथा ३. मन के द्वारा उनका मनन। इन तीनों का महान साधन कहा गया है।

भगवान श्रीकृष्ण की माखन चोरी वाली कथा होथी को बहुत अच्छी लगी। अब वह रोज नियम पूर्वक कथा में आने लगा। इस तरह कथा में आते हुए होथी को पूरे पांच वर्ष हो गये। वह समझ गया कि सारे संसार को उत्पन्न करने वाले, सारे संसार की पालना करने वाले तथा सम्पूर्ण जगत का संहार करने वाले, तीनों लोकों के एकमात्र स्वामी भगवान श्रीकृष्ण ही हैं।

वो इस बात को भी जान गया कि गुरु की कृपा के बिना भगवान के दर्शन नहीं होते। इसलिये एक दिन होथी ने मुरार साहेब से कहा कि मैं आपको अपना गुरु ही मानता हूं। कृपा करके मुझे वो साधन बतलावें जिससे मुझे भगवान श्रीकृष्ण की प्राप्ति हो जावे।

सन्त मुरार साहेब ने कहा—बेटा होथी! भगवान तो भक्ति से ही मिलते हैं—भक्ति का प्रथम साधन है, श्रद्धा। दूसरा साधन है सत्पुरुषों का संग। तीसरा साधन है—ध्यान और चौथा साधन है—मन्त्र जाप। तुम्हारे अन्दर श्रद्धा है इसीसे तुम नित्य नियम पूर्वक कथा में आते हो ये देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। मैं तुम्हें भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान व मन्त्र बतलाता हूं।

卐 ध्यान से मन एकाग्र होता है 卐

नास्ति ध्यानसमं तीर्थं; नास्ति ध्यानसमं तपः।
नास्ति ध्यानरूपो यज्ञस्; तस्मात् ध्यानं समाचरेत्॥

ध्यान के समान कोई तीर्थ नहीं; ध्यान के समान कोई तप नहीं है; ध्यान के समान कोई यज्ञ नहीं है; इसलिये अपने हृदय में परमेश्वर का ध्यान अवश्य करना चाहिये।

ध्यान करते समय नेत्र बंद करके अपने हृदय में हरे भरे वृक्षों से परिपूर्ण श्री वृन्दावन धाम को देखना। वृक्षों पर फूल खिले हैं तथा फल लगे हुए हैं। डालियों पर हंस, कोयल, तोते, बुलबुल व कबूतर बैठे हैं। जमुनाजी धीरे धीरे बह रही हैं। यमुना के किनारे मयूर नृत्य कर रहे हैं; गौएँ हरी हरी घास चर रही हैं इसी वृन्दावन में अत्यन्त मनोहर कल्पवृक्ष के नीचे सुवर्ण-मयी वेदी पर लाल रंग के अष्टदल कमल के मध्य भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान करना—

श्रीकृष्ण की अंग-कांति नील कमल के समान है। वे मोर पंख का मुकुट पहने हुए हैं। कमर में पीतांबर शोभा दे रहा है। उनका मुख चन्द्रमा को भी लज्जित कर रहा है। उनके नेत्र खिले हुए कमल से भी अधिक शोभायमान हो रहे हैं। कौस्तुभमणि की प्रभा से सम्पूर्ण अंग चमक रहा है। वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह सुशोभित है। वृज की सुन्दरियाँ उनकी पूजा कर रही हैं। गोपवृन्द गोपियों के पास खड़े बंसी आदि वाद्य बजा रहे हैं। श्रीकृष्ण के बाल काले व घुंघराले हैं वे मन्द मन्द मुस्करा रहे हैं। भगवान के चरण कमल अति सुन्दर है। श्रीकृष्ण के दाहिने हाथ में खीर और बाँये हाथ में तुरन्त का निकला हुआ मक्खन है। इन्द्रादि देवता उनके चरणों की आराधना कर रहे हैं। दही व गुड़ का भोग लगाकर ये मानसिक ध्यान करना।

इस प्रकार अपने हृदय में भगवान श्री कृष्ण का ध्यान करते हुए तू उनका सर्व सिद्धि प्रदायक

卐 क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा 卐

इस मंत्र का जप करना। जब तू इसके बारह लाख जप कर लेगा तब तुझे भगवान श्री कृष्ण के स्वप्न में अवश्य दर्शन होंगे।

पृथ्वी में बीज बोने के कई दिन बाद वह वृक्ष रूप में फलता है। माता के उदर में गर्भ कई दिनों के बाद परिपक्व होता है इसी प्रकार धीरज व लगन के साथ तू साधन करेगा तो तुझे अवश्य सफलता मिलेगी। कठिनाइयों से मत घबराना; ये ही मेरा बार बार तुमसे कहना है।

परमात्मा निराकार भी है और साकार भी है। पानी बर्फ व ओले सब जल रूप हैं इस तरह निर्गुण व सगुण दोनों एक ही परमात्मा के स्वरूप हैं। अपने भक्त के प्रेम के वश में होकर निराकार परमात्मा भी साकार हो जाता है। साकार रूप में भगवान श्री कृष्ण ही साक्षात् परमात्मा हैं—

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमबस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥

स ब्रह्मा स शिवो विप्र स हरिः सैव देवराट्।
स सर्वरूपः सर्वाख्यः सोऽक्षरः परमः स्वराट्॥

अपने गुरुदेव की बताई हुई युक्ति के अनुसार ही अब होथी प्रतिदिन भगवान श्रीकृष्ण के मंत्र का जाप व श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगा। प्रत्येक एकादशी की रात को वह जागरण में भी जाता था और बहुत ही प्रेम से भजन गाया करता था।

परन्तु होथी का इस तरह सत्संग में आना व संकीर्तन करना उसकी जाति वालों को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने होथी के पिता सिकन्दर मिर्जा को पंचायत में बुलाकर कहा—अगर तुम अपने बेटे का सत्संग में जाना बंद नहीं करोगे तो तुमको जाति से बाहर कर दिया जावेगा।

दूसरे दिन होथी के पिता ने होथी से कहा—तू पठान का लड़का है। तलवार चलाना, बन्दूक चलाना, कुश्ती लड़ना व पटेबाजी आदि सीख। अब कभी भी सत्संग में मत जाना। बिरादरी वालों की बात मानने में ही हमारी भलाई है। बचपन में मैंने तुझे कुछ नहीं कहा मगर अब तू जवान होगया है। किसी काम धन्धे में मन लगा।

होथी ने अपने बाप की सब बात चुपचाप सुनली। उस दिन उसने अपने बाप को कुछ भी जवाब नहीं दिया। शाम को वह मुरार साहेब के पास आया और उनको सब बात सुनादी और पूछा कि अब मुझे क्या करना चाहिये? पिता की बात मानूं या भक्ति करूं?

मुरार साहेब ने कहा—गलत बात माता पिता व गुरु की भी नहीं माननी चाहिये। भगवान तेरी परीक्षा ले रहे हैं। साधन मार्ग में अनेकों विघ्न आते हैं परन्तु जो उन विघ्नों से नहीं घबराता उसे ही पूर्ण सफलता मिलती है। साधन मार्ग के दस विघ्न है—

१. आलस २. बीमारी ३. प्रमाद ४. संशय ५. चंचलता ६. अश्रद्धा ७. भ्रान्ति ८. दुःख की भावना ९. द्वेष भाव १०. विषय लोलुपता।

१. आलस—सुबह के काम को शाम को, आज के काम को कल व सप्ताह के कामको महिने में करना।

२. बीमारी—शरीर में किसी बड़े रोग का होना।

३. प्रमाद—कार्य में बारे में सोचते रहना पर उसे शुरू नहीं करना (मन का आलस)

४. संशय—हमारे जैसे पापी को क्या पता भगवान मिलेंगे या नहीं; ऐसी बातें मनमें सोचना।

५.चंचलता—भजन करते समय बार बार उठना व बीच बीच में दूसरों से बातें करते रहना।

७. अश्रद्धा—गुरु के व शास्त्रों के वचनों में पूर्णरूप से विश्वास का न होना।

७. भ्रान्ति—भगवान से बढ़कर भोगों को मानना।

८. दुःख की भावना—मैं गरीब हूँ; मेरे पुत्र नहीं है; मेरे पास घर का मकान नहीं है, मेरा आदर कोई नहीं करता; बेटा व बहू मेरी बात नहीं सुनते! मेरे जैसा दुःखी संसार में कोई नहीं है; ऐसी भावना।

९. द्वेष भाव—दूसरे के प्रति अपने मन में वैर रखना।

१०. विषय लोलुपता—चिलम, चाय, बीड़ी, शराब व स्त्री चर्चा में आनन्द मानना।
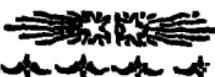
卐 मेरी सम्पत्ति तो श्री कृष्ण हैं। 卐

प्रेम दीवाने जो भये; तिनको मतो अगाध।
त्रिभुवन की संपति दया; तृणसम जानत साध॥

सात दिन बाद एकादशी आई। रात को जब होथी सत्संग में जाने लगा। तब उसके बाप ने घर के बाहर का दरवाजा बंद कर दिया और होथी से कहा—अगर तू आज सत्संग में जायेगा तो मेरी जायदात की एक फूटी कौड़ी भी तुझे नहीं मिलेगी।

होथी ने कहा—मुझे आपका एक भी पैसा नहीं चाहिये। मेरी सम्पत्ति तो श्रीकृष्ण हैं। प्रेमी की जायदात तो भगवत्प्रेम है। वो तो तीनों लोकों की सम्पति को तिनके के समान समझता है।

होथी के पिता ने होथी की बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया। उसने कहा—बकवास बन्द कर; चुपचाप छत पर चलकर सोजा। बाहर का दरवाजा बन्द था अतः होथी छत पर जाकर अपनी चारपाई पर लेट गया। वह मन ही मन भगवान से प्रार्थना कर रहा था कि मैं सत्संग में कैसे आऊँ?

थोड़ी देर बाद होथी के बाप को नींद आगई। दरवाजे की चाबी उसके सिरहाने पड़ी थी। होथी ने चाबी लेकर दरवाजा खोल लिया और रात को दस बजे करीब वह सत्संग में पहुँच गया। उस दिन होथी ने विरह वेदना से परिपूर्ण अति सुन्दर भजन गाया जिसे सुनकर सबके नेत्रों में प्रेमाश्रु आगये।

रात को दो बजे सत्संग समाप्त हुआ। होथी के बाप की नींद खुल चुकी थी वह दरवाजे के बाहर खड़ा होथी के आने की इन्तजार कर रहा था। जब होथी अपने घर आया तब उसने कहा—आज तो मैं माफ करता हूं मगर आइन्दा से अगर तू सत्संग में जायगा तो या तो तू जिन्दा नहीं रहेगा या मैं।

उस दिन तो होथी की बला टल गई परन्तु पन्द्रह दिन बाद फिर एकादशी आई। उस दिन भी जब होथी सत्संग में जाने लगा तब उसके बाप ने कहा—तेरी हरकतें देखकर मेरा जी बहुत जलता है। इतनी बड़ी जायदात को लात मारकर भी तू सत्संग में जाता है। आखिर तुझे क्या हो गया है? होथी ने अपने बाप की बात का कुछ जवाब नहीं दिया। उसने यह शेर बोला—

आशिक जहाँ से दौलतो, इकबाल क्या करे?
मुलको मकाँ तेग तबर, ढाल क्या करे?
जिसका लगा है दिल, वो जरे माल क्या करे?
ग्राहक ही कुछ ना लेवे, तो दलाल क्या करे?

इस शेर को सुनकर होथी का बाप चिढ़ गया। उसने एक कटोरे में आधा पाव अफीम घोल दी और कहा—ये ले इसे पीले। मैं समझूंगा कि मेरे कोई औलाद नहीं हुई। अगर तू नहीं पीवेगा तो इसे मैं पी जाऊंगा। मेरे मरने के बाद जहाँ तेरी इच्छा हो वहाँ जाया करना। होथी ने अपने बाप के हाथ जहर का कटोरा ले लिया और हंस कहा—ये तो प्रेम प्याला है।

प्रेम पियाला वो पिये, जो शीश दक्षिणा देय।
लोभी शीश ना देसके, नाम प्रेम का लेय॥
नारायण प्रीतम निकट, वो ही पहुंचन हार।
गेंद बनावे शीश की, खेले बीच बजार॥
बच्चों का नहीं खेल, ये है मैदान मोहब्बत।
आवे जो यहाँ मिरदे, कफन बाँध के आयें॥

जहर का कटोरा लेकर होथी अपने कमरे में चला गया। अपने कमरे में जाकर उसने भगवान श्रीकृष्ण से प्रार्थना की—मैंने सुना है कि अपने मीराँबाई के जहर को भी अमृत बना था। यदि मैं आपका सच्चा भक्त होऊं तो मेरे जहर को भी अमृत बना देना और यदि मैं आपका ढोंगी भक्त होऊं तो मार डालना। आप तो भक्त वत्सल हैं। इतना कहकर होथी कमरे से बाहर आगया और जहर पीने लगा तब उसके बाप ने कहा—अबे ? क्यों कुत्ते की मौत मरता है ? इस पर होथी ने ये शेर बोला—

निकले जो जनाजा तो मेरा धूम से निकले।
ये दिलकी तमन्ना है कि जरा धूम से निकले॥

जहर पीकर होथी अपने कमरे में जाकर चुपचाप लेट गया। उसके बाप ने कमरे के बाहर ताला लगा दिया और घूमने चला गया। वह अपने मन में सोच रहा था कि होथी की लाश को रात में कहाँ ले जाकर दफनाऊं !

उधर रात की ग्यारह बज गये। सब लोग होथी को याद कर रहे थे। होथी तो जहर पीकर सोगया था परन्तु उसके इष्ट देव श्रीकृष्ण नहीं सो रहे थे। अपने भक्त की दृढ़ता व विश्वास को देखकर उन लीलाधारी ने होथी का ही रूप धारण कर लिया और अपने भक्त की जगह स्वयं ही संकीर्तन में पहुँच कर ये भजन गाने लगे—मैं नित भगतन हाथ बिकाऊं।

होथी का बाप भी उसी मार्ग से धीरे धीरे अपने घर आ रहा था। होथी के गाने की आवाज जब उसने सुनी तो वह हैरान होगया। सत्संग में जाकर उसने होथी को भजन गाते देखा तो उसे और भी आश्चर्य हुआ। वह दौड़ता हुआ अपने घर आया।

घर आकर, उसने उस कमरे को खोला जिसमें होथी सो रहा था। होथी को सोते देखकर वह समझ गया कि मेरा बेटा जिस खुदा की भक्ति करता है वह खुदा ही खुद उसका रूप बनाकर संकीर्तन में भजन गा रहा है। मैंने भजन को सुना था। वह गा रहा था—मैं नित भगतन हाथ बिकाऊँ।

वह हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा—हे हिन्दुओं के खुदा! मेरा कसूर माफ करना। आज मैं समझगया हूं कि सबका खुदा एक है। वह एक ही परमात्मा अपने भक्तों के कार्य करने के लिये अनेक रूप धारण कर सकता है। तू मेरे बेटे होथी को जिन्दा करदे। अब मैं उसे सत्संग में जाने से कभी नहीं रोकूँगा। मैं भी तेरी भक्ति करूंगा।

इतना कहकर उसने होथी को हिलाया। होथी तो तुरन्त जग गया और उठकर बैठ गया। होथी के बाप ने होथी से भी माफी माँगी और कहा तेरी जगह तेरा ही रूप बनाकर तेरे भगवान श्रीकृष्ण स्वयं ही सत्संग में भजन गा रहे हैं मैं खुद अपनी आँखों से उनके दर्शन करके आ रहा हूं।

बाप की बात सुनकर होथी भी तुरन्त सत्संग में गया। सब लोगों ने जब दूसरे होथी को भी देखा तो वे भी आश्चर्य करने लगे। होथी ने पहले तो अपने गुरुदेव मुरार साहेब को प्रणाम किया और फिर मंच पर जाकर श्रीकृष्ण के चरणों में गिरने लगा। उसी समय श्रीकृष्ण ने उसे पकड़कर अपने हृदय से लगा लिया और मुकुट धारी, बनवारी, बंसी लिये अपने असली स्वरूप में प्रकट हो गये।

❋ बोलो भक्त और भगवान की जै ❋

भक्त होथी की कथा सुनने के दूसरे दिन सत्संग में माताओं ने स्वामी शारदानन्द जी महाराज से प्रार्थना की कि आप हमें शबरी की कथा सुनाने की कृपा करें। माताओं की बात से शारदानन्द जी महाराज बहुत प्रसन्न हुए। वे बोले—माताओं आपको धन्य है जो आपके हृदय में शबरी की कथा सुनने की इच्छा उत्पन्न हुई है। होथी के समान साधन करना व मौत से भी नहीं डरना आदि साधन सबसे नहीं हो सकते परन्तु शबरी ने जो साधन किया वह तो सभी लोग सुगमता पूर्वक कर सकते हैं। शबरी का चरित्र श्रद्धा और विश्वास का ज्वलन्त उदाहरण है—

दंडक वन में शबरी नाम की एक अत्यन्त गरीब भीलनी रहती थी जिसके पति व पुत्र दोनों ही नहीं थे। एक दिन उसने बन में मतंग ऋषि के दर्शन किये जो अपने शिष्यों के साथ आश्रम को लौट रहे थे। मतंग ऋषि के दर्शन से ही शबरी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने मनमें विचार किया कि ऐसे महापुरुष की सेवा यदि मुझे मिल जावे तो मेरा जीवन भी धन्य हो सकता है। परन्तु मैं तो अछूत हूं; ये मेरी सेवा कैसे स्वीकार करेंगे ?

ये विचार करते शबरी उनके पीछे पीछे चली आई और उनका पवित्र आश्रम देख लिया। उसने दो प्रकार की सेवा गुप्तरूप से शुरू करदी—१. रात्री के समय वह लकड़ियों का एक बोझा आश्रम की अन्य लकड़ियों में डाल दिया करती थी तथा २. प्रातःकाल जल्दी उठकर उस मार्ग को झाड़ू द्वारा साफ कर दिया करती थी जिधर से ऋषी-मुनी नदी पर स्नान करने जाया करते थे।

इस प्रकार दोनों सेवायें करते हुए शबरी को बहुत दिन हो गये। एक दिन शिष्यों ने अपने गुरुदेव मतंग ऋषि से कहा कि रात्रि में कोई पुरुष चुपचाप लकड़ियाँ रख जाता है। मतंग ऋषि ने उस दिन रात्रि में चार शिष्यों को जगने की आज्ञा दी। अपने नियम के अनुसार जब शबरी लकड़ी का बोझ रखने लगी तब शिष्यों ने उसे रोक लिया। प्रातःकाल उन्होंने शबरी को मतंग ऋषि के सम्मुख लेजाकर खड़ा कर दिया।

मतंग ऋषि ने शबरी से पूछा—कल्याणी! तू क्या चाहती है और ये सेवा क्यों करती है? शबरी ने हाथ जोड़कर दीनता-पूर्वक कहा—महाराज! मुझे संसार के किसी भी पदार्थ की इच्छा नहीं है। मैं तो केवल भगवान के दर्शन करना चाहती हूं। और किसी प्रकार की सेवा में अपना अधिकार न देखकर मैंने लकड़ियों की सेवा करना ही उचित समझा। मेरा कोई अपराध हो तो मैं क्षमा माँगती हूं।

शबरी के दीन व यथार्थ वचन मतंग ऋषि को अच्छे लगे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि अपने आश्रम के एक कोने में एक कुटिया शबरी को रहने के लिये दे दो। इस पर शिष्यों ने कहा—गुरुदेव! शबरी तो अछूत है। आप इसे आश्रम में रखेंगे तो दूसरे ऋषी-मुनी आप से नाराज हो जायेंगे।

मतंग ऋषी ने कहा—भगवत् भक्ति में तो सबका अधिकार है। भक्ति तो नीच को ऊंच बना देती है। भगवान भी गरीब-नवाज, दीनानाथ, पतितपावन अधम उधारन हैं फिर हम उनके मित्र दीनों का अपमान कैसे कर सकते हैं। अतः तुम शबरी को आश्रम में स्थान दे दो।

卐 शबरी आश्रम में रहने लगी 卐

अब शबरी मतंग ऋषि के आश्रम में रहने लगी। वह वन से कन्द मूल फल लाकर अपना पेट भर लिया करती थी। मतंग ऋषि ने उसे राम नाम जपने का उपदेश दिया उसी के अनुसार रामजी का ध्यान करते हुए वह राम का जाप किया करती थी। इस प्रकार भजन करते हुए शबरी का बहुत समय बीत गया।

शबरी को आश्रम में स्थान देने के कारण मतंग ऋषि से दूसरे आश्रमवासी नाराज होगये। उन्होंने मतंग ऋषि के आश्रम में आना व उनसे बात करना भी छोड़ दिया। उन्होंने शबरी को पंपा सरोवर से जल भरने को भी मना कर दिया। भक्ति तत्त्व के ज्ञाता मतंग ऋषि ने इन सब बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया।

एक दिन मतंग ऋषि ने अपने शिष्यों से कहा—मेरा अंतिम समय आगया है; अब मैं अपना शरीर छोड़ना चाहता हूं। यह बात सुनकर शबरी को बहुत दुःख हुआ। वह फूट फूट कर रोने लगी। उसे रोती देखकर मतंग ऋषि ने कहा—भगवान रामचन्द्र इस समय चित्रकूट में हैं। वे यहाँ अवश्य पधारेंगे। वे साक्षात् परमात्मा हैं। उनके दर्शन से तेरा कल्याण हो जायेगा। भगवान जब यहाँ पधारें तब तू उनका भलीभांति सत्कार करना। भगवान के आने तक तू धैर्य धारण करके राम नाम जपती रह।

शबरी को धैर्य बंधाकर मतंग ने अपना शरीर छोड़ दिया। अब शबरी ने राम भजन में अपना मन ऐसा लगाया कि दूसरी किसी बात का ध्यान ही नहीं रहा। ज्यों ज्यों दिन बीतते गये त्यों ही त्यों शबरी की राम दर्शन लालसा बढ़ती गई।

राम नाम सबही जपें; जपने का है विचार ।
वही नाम साधू जपे; वही जपे संसार ॥

जरा सा शब्द सुनते ही वह दौड़कर कुटिया से बाहर आ जाती थी। पशु-पक्षियों से पूंछा करती थी कि मेरे राम कब आयेंगे। कभी कहती—शाम तक जरूर आयेंगे। रात को सोचती—सवेरे तो जरूर आ ही जायेंगे। कभी घर के बाहर जाती औ कभी अन्दर आती।

मेरे राम के कोमल चरणों में काँटा नहीं चुभ जावे। इस भावना से बार बार रास्ता साफ किया करती थी। कुटिया के आंगन में रोज नई मिट्टी व गोबर से लीपा करती थी। वन में जिस पेड़ के फल मीठे होते थे वही फल रामजी के लिये रख छोड़ती थी।

पेड़ों के सूखे पत्ते वृक्षों से झड़कर नीचे गिरते तो उनके शब्दों को शबरी राम के पैरों का आहट समझकर रात्रि में कई बार कुटिया से बाहर आकर देखा करती थी कि—मेरे राम आ तो नहीं गये हैं। राम के ध्यान में वह पागल सी होगई थी।

आठों पहर उसका चित्त राम में रमने लगा। उसने रामजी को खिलाने के लिये कुछ बेर भी रख रखे थे। रामजी के चरण धोने के लिये उसने स्वच्छ घड़े में शीतल जल भर रखा था। प्रेम के उन्माद में उसे शरीर की सुध भी नहीं रहती थी।

मन में लगी चटपटी; कब निरखूं घनश्याम ।
नारायण मैं भूल गई; खान पान सनमान ॥

卐 शबरी की कुटिया पर श्रीराम 卐

एक दिन अचानक मुनियों के बालकों ने शबरी से कहा – तेरे रामजी आ रहे हैं। शबरी रामजी को अपनी कुटिया पर लाने के लिये उनकी अगवानी करने रामजी की ओर चली। उधर रामजी भी बालकों से पूछ रहे थे—मेरी शबरी कहाँ है ? अनेकों ऋषि-मुनियों ने रामजी को अपने आश्रम में चलने को कहा परन्तु रामजी तो शबरी की कुटिया के बारे में ही सबको पूछ रहे थे। शबरी ने दूर से जब रामजी को देखा तो उसे अपने गुरुदेव मतंग ऋषि के वचन याद आगये कि—एक दिन रामजी तेरी कुटिया पर जरूर पधारेंगे।

शबरी देखि राम गृह आये। मुनि के वचन समुझि जियभाये॥
सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेम मगन मुखवचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर लावा॥

आज शबरी के आनन्द का पार नहीं है। वह प्रेम में पगली होकर नाचने लगी। शबरी की यह दशा देखकर भगवान ने मुस्कराते हुए लक्ष्मणजी की ओर देखा। लक्ष्मणजी ने शबरी से कहा—अरी पगली ! नाचती ही रहेगी या प्रभु का अतिथि सत्कार भी करेगी। लक्ष्मणजी के वचनों से शबरी को चेत हुआ। उसने राम लक्ष्मण के चरणों में प्रणाम किया फिर उनके चरण धोये और सुन्दर आसन पर विराजमान किया—

सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुन्दर आसन बैठारे॥

आसन पर विराजमान होकर रामजी ने शबरी से पूछा—तुमने साधन के समस्त विघ्नों पर विजय तो पाई है ? तुम्हारा तप तो बढ़ रहा है ? तुमने क्रोध और आहार का संयम तो किया है ? तुम्हारी गुरु सेवा सफल होगई। तुम्हारे मन में शांति तो है ?

रामजी के वचन सुनकर शबरी ने कहा—भगवन्! आज आपके दर्शन से मेरा जन्म सफल हो गया है। मेरा तप व गुरु सेवा सभी आज सफल होगये। शबरी अधिक नहीं बोल सकी। उसका गला प्रेम से रुंध गया। थोड़ी देर चुप रहकर उसने कहा—प्रभो! मैंने आपके लिये कुछ फल संग्रह करके रखे हैं; उन्हें आप स्वीकार करने की कृपा करें। इतना कहकर शबरी ने सब फल रामजी के आगे रख दिये। भगवान भी बड़े प्रेम से सराहना करते हुए फलों को खाने लगे। फल खाते समय एक खट्टा बेर रामजी के मुंह में आगया। शबरी को ये बात पता लग गई और वह चख चख कर रामजी को बेर खिलाने लगी। भगवान भी खूब प्रेम से खाने लगे—

बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु;
'रसिकबिहारी' देत बन्धु कहं फेर फेर।
चाखि चाखि भाखैं यह वाहूते महान मीठो;
लेहु तो लखन यों बखानत हैं टेर टेर॥
बेर बेर देवे को सबरी सुबेर बेर;
तोऊ रघुबीर बेर बेर ताहि टेर टेर।
बेर जनि लाओ बेर बेर जनि लाओ बेर;
बेर जनि लाओ बेर लाओ कहैं बेर बेर॥

घर, गुरुगृह, प्रियसदन, सासुरे भइ जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई॥

बेर खाकर भगवान ने मुस्कराते हुए कहा—शबरी! इतने मीठे बेर तुम कहाँ से लाई हो? इनमें तो ढेरसा मीठा है—

लाईं हो किस ठौर से इतने मीठे बेर।
किस रस में डाला इन्हें मीठा इनमें ढेर॥

शबरी ने कहा—भगवन्! मेरे बेर मीठे नहीं हैं। आपका हृदय ही मीठा है। मैं तो नीच जाति की भीलिनी स्त्री हूं। मेरे हाथ की वस्तु तो कोई भी स्वीकार नहीं करता। मैं कुछ पढ़ी लिखी भी नहीं हूं। मैं आपकी स्तुति कैसे करूं?

रामजी ने कहा—हे शबरी! तुमने हमको अपने झूंठे बेर खिलाये हैं अतः अब तुम हमारी माता के समान होगई हो। पुरुष, स्त्री, जाति या आश्रम मेरे भजन में कारण नहीं हैं; केवल भक्ति ही कारण है।

झूंठे खिलाये बेर क्या; मेरा चित्त तूने हर लिया।
माता समान तू होगई; सुत भाव जो मुझ पर किया॥

इसके बाद भगवान ने शबरी को नवधा भक्ति का स्वरूप बतलाया और उसे वरदान मांगने को कहा तब शबरी ने कहा कि—आप में मेरी भक्ति सदा बनी रहे। इतना कहकर शबरी ने भगवान के सामने ही अपना शरीर छोड़ दिया और परमधाम को प्रयाण कर गई।

शबरी की कथा माताओं को बहुत अच्छी लगी। एक माता ने स्वामी शारदानन्दजी महाराज से कहा—स्वामी जी महाराज! शबरी तो त्रैतायुग में हुई थी। उस समय तो भगवान का मिलना सरल था। इस समय तो कलियुग है। हमनें सुना है कि ५०० वर्ष पहले मीराँबाई भगवान श्रीकृष्ण की अनन्य भक्त होगई थी। आपने राम भक्त शबरी की पावन कथा सुनाई अब कल कृपा करके कृष्ण भक्त मीराँबाई की मधुर कथा सुनाना। स्वामी शारदानन्द जी ने कहा—अच्छा माता जी! कल हम मीराँबाई की ही कथा सुनायेंगे।

—: मीराँबाई का बचपन :—

दूसरे दिन सत्संग में स्वामी शारदानन्द जी महाराज इस प्रकार कहने लगे—मीराँबाई का जन्म मारवाड़ के कुड़की नामक ग्राम में संवत् १५५८ में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री रतनसिंह जी राठौर था। मीराँ अपने माता पिता की इकलौती लड़की थी अतः मीराँबाई का लालन पालन बड़े ही लाड़ प्यार से हुआ।

एक दिन रतनसिंह जी के घर एक साधु आये। उनके पास भगवान श्रीकृष्ण की एक अति सुन्दर मूर्ती थी। वह मूर्ती मीराँ को बहुत अच्छी लगी। उसने महात्माजी से वह मूर्ती मांगी। महात्माजी ने मीराँ को वह मूर्ती देदी और कहा—ये भगवान है; इनका नाम श्री गिरधारीलाल जी है। तू प्रतिदिन प्रेम से इनकी पूजा करना।

卐 म्हाने सुपने वरी गोपाल 卐

सरल हृदय बालिका मीराँबाई प्रेमपूर्वक सच्चे मन से भगवान की सेवा पूजा करने लगी। इस समय मीराँ की अवस्था दस वर्ष की थी। मीराँ भगवान को नहलाती, चन्दन लगाती, पुष्प चढ़ाती, भोग लगाती, व आरती करती। सपने में कई बार मीराँ को भगवान के दर्शन हुए पर ये बात उसने किसी से नहीं कही। दस वर्ष की अवस्था से ही मीराँ पद रचना करने लगी।

जब मीराँबाई १५ साल की हुई तब उसके माता पिता उसके विवाह की तैयारी करने लगे। मीराँबाई ने विवाह करने से मना कर दिया। कारण पूंछने पर मीराँ ने अपनी माता को यह पद सुनाया—

माई म्हाने सुपने वरी गोपाल।
राती पीती चुनरी ओढ़ी; मंहदी हाथ रसाल ॥
कोई औरको वरूं भाँवरी; म्हाँके जग जंजाल।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर; करी सगाई हाल ॥

जब सखियों को इस बात का पता चला तब हंसी मजाक करते हुए उन्होंने मीराँबाई को श्री गिरधरलाल जी से विवाह करने का कारण पूंछा तब मीराँबाई ने कहा—

ऐसे वर को क्या वरूं; जो जनमै और मर जाय।
वर वरिये श्रीकृष्ण को; म्हारो चूड़ो अमर हो जाय ॥

मीराँबाई की बात पर उनके परिवार वालों ने विशेष ध्यान नहीं दिया और मीराँ की इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह चित्तौड़ के महाराजा सांगाजी के बड़े बेटे भोजराज के साथ संवत् १५७३ में कर दिया। मीराँबाई ने विवाह के मण्डप में पहले से ही श्री गिरधरलाल जी की मूर्ती रखवा दी थी। कुमार भोजराज के साथ फेरे लेते समय मीराँबाई ने श्री गिरधरलाल जी के साथ भी फेरे ले लिये।

कुमार भोजराज मीराँबाई को लेकर चित्तौड़ आगये। कुल के रिवाज के अनुसार देवी-देवताओं की पूजा करने के समय मीराँबाई ने कह दिया कि मैं तो मेरे गिरधरलाल जी के सिवा किसी भी देवता की पूजा नहीं करूंगी। इस बात से मीराँ की सास व सभी ससुराल वाले उससे नाराज होगये।

ससुराल जाते समय दहेज में अपनी लाड़ली बेटी को माता पिता ने बहुत धन दिया। पर मीराँ का मन तो उदास ही रहा। माता ने पूछा—बेटी! तू क्या चाहती है? जो चाहिये सो ले ले। तब मीराँबाई ने कहा—मेरे धन तो गिरधरलाल जी हैं। मैं उनकी मूर्ती को भी अपने साथ ही ले जाना चाहती हूं। भक्त को अपने भगवान के सिवा और क्या चाहिये? माता ने प्रेम से गिरधरलाल जी की मूर्ती मीराँबाई की पालकी में रख दी।

मीराँबाई की भक्ति भावना को देखकर कुमार भोजराज पहले तो नाराज हुए परन्तु अन्त में मीराँबाई के सरल हृदय की शुद्ध भक्ति देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मीराँबाई के लिये एक मन्दिर बनवा दिया। मीराँबाई नये नये भजन बनाकर भोजराज को सुनाती जिससे उनका हृदय आनन्द से भर जाता था।

卐 मेरो दरद न जाणे कोय 卐

मीराँबाई अपना सच्चा पति तो श्री गिरधरलाल जी को ही मानती थी परन्तु अपने लौकिक पति कुमार भोजराज को कभी नाराज नहीं होने दिया। अपने सरल स्वभाव से व निष्काम सेवा भाव से उनको सदा प्रसन्न रखा। कुछ समय बाद मीराँबाई की अनुमति लेकर कुमार भोजराज ने दूसरा विवाह कर लिया। इस विवाह से मीराँबाई को बड़ी प्रसन्नता हुई।

अब मीराँबाई अपना सारा समय भजन कीर्तन व साधुओं की संगत में लगाने लगी। वह कभी विरह से व्याकुल होकर रोने लगती। कभी ध्यान में दर्शन करके खूब नाचती थी। कई दिनों तक बिना कुछ खाये-पिये प्रेम समाधि में पड़ी रहती। कोई समझाने आता तो, उससे भी कृष्ण प्रेम की ही बातें करती। शरीर दुबल होगया; ससुराल वालों ने समझा बीमार है। उन्होंने मीराँबाई के पिता जी को पत्र लिख दिया। पिताजी मारवाड़ से वैद्य लेकर मीराँ के पास पहुँचे तब मीराँ गाने लगी—

हे री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दरद न जाने कोय ॥

सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय।
गगनमण्डल पै सेज पिया की, किस विध मिलणा होय ॥

घायल की गति घायल जाणै, की जिण लाई होय।
जौहर की गति जौहरी जाणै, की जिण जौहर होय ॥

दरद की मारी बन बन डोलूं, वैद मिल्या नहि कोय।
मीराँ की प्रभु पीर मिटे जब, वैद साँवलिया होय ॥

जब वैद्यराज चले गये तब मीराँ को प्रेम का उन्माद चढ़ा। इसी भावावेश में मीराँबाई ने भगवान के विरह का पद गाया—

नातो नाँव को जी म्हासूं तनक न तोड़्यो जाय ॥

पानाँ ज्यों पीली पड़ी रे, लोग कहै पिंड रोग।
छाने लाँघण मैं किया रे, राम मिलण के जोग ॥

बाबुल वैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हारी बाँह।
मूरख वैद मरम नहीं जाणै, कसक कलेजे माँह ॥

जावो वैद घर आपणै रे, म्हारो नाँव न लेय।
मैं तो दाझी विरह की रे, काहेकूं औषध देय ॥

माँस गलगल छीजिया रे, करक रहा गल आय।
आँगलियाँ की मूंदड़ी, म्हारे आवण लागी बाँह ॥

रह रह पापी पपीहरा रे, पिव को नाम न लेय।
जे कोई विरहण साम्हल रे, पिव कारण जिव देय ॥

छिण मंदिर छिण आँगणै, छिण छिण ठाढ़ी होय।
घायल ज्यूं घूंमू खड़ी, म्हारी बिथा न पूछै कोय ॥

काढ़ कलेजो मैं धरूं रे, कागा तू ले जाय।
जिण देसाँ मेरो पिव बसै रे, उण देखत तू खाय ॥

म्हारी नातो नाम को रे, और न नातो कोय।
मीराँ व्याकुल विरहणी, हरि दरसण दीजो मोय ॥
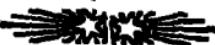
सच्चे प्रेम के हाथों भगवान बिक जाते हैं। वे प्रेमी के पास आना चाहते हैं पर पहले प्रेम परीक्षा जरूर करते हैं—संवत् १५८० में कुमार भोजराज का देहान्त होगया। राजगद्दी पर मीराँ के देवर विक्रमाजीत आसीन हुए। उनको मीराँ का भक्ति भाव, रहन-सहन, बिना किसी रुकावट के साधुओं का महल में आना, और चौबीसों घण्टे कीर्तन होना बहुत अखरने लगा। उन्होंने मीराँबाई को कहलवा दिया कि हमें तुम्हारा दिन रात साधुओं की मण्डली में रहना बिलकुल पसंद नहीं है। इस पर मीराँबाई ने दासियों को यह पद सुनाया—

बरजी मैं काहू की नाहीं रहूं।
सुनोरी सखी! तुम चेतन होके, मन की बात कहूं॥

साधु-संगत कर हरि गुण गाऊं, जग से दूर रहूं।
तन धन मेरो सबही जावो, भल मेरो सीस लहूं॥

मन मेरो लाग्यो सुमिरण सेती, सबका मैं बोल सहूँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सतगुरु शरण रहूं॥

ये भजन सुनकर दासियों ने मीराँबाई से कहा कि आप राणाजी की बात नहीं मानेंगी तो वे आपको यहाँ नहीं रहने देंगे। इस पर मीराँबाई ने हंस कहा—

राणाजी रुठै तो अपणी नगरी राखसी।
साँवलिया रुठै तो राणां कहाँ पै राखसी॥

एक दिन मीराँबाई के देवर ने एक दासी के साथ चरणामृत के नाम से जहर का प्याला मीराँबाई के पास भेजा। चरणामृत का नाम सुनते ही मीराँबाई बड़े प्रेम से उसे पी गई। पर मीराँबाई के शरीर पर जहर का कुछ भी असर नहीं हुआ। भगवान ने मीराँबाई के विष को अमृत को बना दिया।

उसके बाद फूलों की टोकरी में सर्प को बन्द करके मीराँबाई के पास भेजा गया। मीराँबाई के बिस्तरे पर जहर के पानी में डुबाई हुई चादर बिछाई गई। और भी अनेक प्रकार के दुःख दिये परन्तु सब जगह श्री गिरधरलाल जी ने मीराँ की रक्षा की। स्वयं मीराँबाई ने इस भजन में कहा है—

मीराँ मगन भई हरिगुण गाय।

साँप पिटारा राणा भेज्या, दीजो मीराँ जाय।
शाम हुई मीराँ देखण लागी, सालगराम गई पाय॥

सूली सेज राणा ने भेजी, दीजो मीराँ सुलाय।
रात हुई जब मीराँ सोई, मानों फूल बिछाय॥

विष का प्याला राणा भेज्या, अमृत दिया बनाय।
कर चरणामृत पी गई मीराँ, होगई अमर अचाय॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, निशदिन करे सहाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पर बलि जाय॥

卐 तुलसीदास जी को पत्र लिखा 卐

जब राणाजी मीराँबाई को तरह तरह के दुःख देने लगे तब मीराँ बाई ने सन्त तुलसीदास जी को एक पत्र लिखा। तुलसीदास ने मीराँबाई के पत्र का उचित उत्तर दिया। तुलसीदास जी का पत्र पढ़कर मीराँबाई ने वृन्दावन जाने का निश्चय कर लिया। ये दोनों पत्र इस प्रकार थे—

—ः मीराँ का पत्र ः—

स्वस्ति श्री तुलसी गुण भूषण दूषण हरण गुसाँईं।
बारहि बार प्रणाम करूं मैं अब हरहु सोक समुदाईं॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबने उपाधी बढ़ाई।
साधु-संग अरु भजन करत मोहि देत कलेस महाई॥
सो तो अब छूटत है नाहीं, लगी लगन बरिआई।
बालपने में मीराँ कीन्ही, गिरधरलाल मिताई॥
मेरे मात तात सम तुम हो, हरिभक्तन सुखदाई।
मोकों कहा उचित करिबो अब, सो लिखियो समुझाई॥

इसके उत्तर में तुलसीदास जी ने लिखा—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
सो छाँडिये कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही॥

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं।
अंजन कहा आंख जेहि फूटै बहुतक कहौं कहां लौं॥

तुलसी सो सब भांति परमहित पूज्य प्राण ते प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद एतो मतो हमारो॥

तुलसीदास जी का पत्र मिलते ही मीराँबाई महल से निकल कर वृन्दावन की ओर चल पड़ी। राणाजी को इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई परन्तु मीराँबाई की सखियों को महान दुःख हुआ। वृन्दावन पहुँचकर श्यामसुन्दर के प्रत्यक्ष दर्शनों की इच्छा से विरह के गीत गाती हुई मीराँबाई कुंजों में भटकने लगीं। जो भी मीराँबाई को देखता वही भक्ति रस में भीग जाता।

जब भक्त भगवान के लिये व्याकुल होता है तब भगवान भी भक्त से मिलने के लिये व्याकुल हो उठते हैं। भक्त भगवान को मजबूर (बाध्य) कर देते हैं। भगवान को बाध्य होकर मीराँ के निकट आना ही पड़ा। भगवान की मनोहर छवि को देखकर मीराँ मोहित होगई और बड़े प्रेम से पद गाने लगी।

एक बार मीराँबाई वृन्दावन में चैतन्य महाप्रभु के शिष्य श्री जीव गोस्वामी जी का दर्शन करने गयीं। उन्होंने कहलवा दिया कि हम स्त्रियों से नहीं मिलते। इस पर मीराँबाई ने कहा— आज तक तो बृज में एक ही पुरुष श्रीकृष्ण थे; आज ये एक और नये पुरुष कहां से प्रगट होगये। मीराँबाई की बात सुनते ही गोस्वामी जी नंगे पैरों बाहर आकर उनसे मिले।

कुछ काल वृन्दावन में निवास करने के बाद संवत् १६०० में मीराँबाई द्वारकापुरी चली गईं। मीराँ जी के जाने के बाद चित्तौड़ में बड़े उपद्रव होने लगे। इससे घबराकर राणाजी मीराँबाई को वापिस लाने के लिये द्वारका गये परन्तु मीराँबाई ने चित्तौड़ लौटना स्वीकार नहीं किया। राणाजी को यों ही वापिस लौटना पड़ा।

राणाजी के जाने के बाद मीराँबाई भगवान द्वारकानाथ के मन्दिर में जाकर गाने लगीं—

प्रभु मैं तो तुम्हरे रंग राती।

औरों के पिया परदेश बसत हैं, लिख लिख भेजें पाती।
मेरे पिया मेरे हृदय बसत हैं, ना कहीं आती जाती॥

चूवा चोला पहर सखी री, मैं झुरमुट रमवा जाती।
झुरमुट में मोहि मोहन मिलिया, खोल मिली तन गाती॥

और सखी मद पीपी माती, मैं बिन पियाँ ही माती।
प्रेम भठी को मैं रस पीयो, छकी फिरूं दिन राती॥

सुरत निरत को दिवलो जीयो, मनसा करली बांती।
अगम धाणि को तेल सिंचायो, बाल रही दिन राती॥

जावूं ना पीहरिये सासरिये, हरि सूं नेह लगाती।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरण चित लाती॥

यों कहकर मीराँबाई भगवान के सामने नाचने लगी। सम्वत् १६३० में भगवान द्वारकानाथ के सामने मीराँबाई संकीर्तन कर रही थीं। उसी समय मीराँबाई का शरीर भगवान की मूर्ति में समा गया। जगत की प्रतीति के लिये मीराँबाई की चूनरी मन्दिर में पड़ी रह गई। इस प्रकार भगवत्प्राप्ती करके मीराँबाई ने भारत के नारी-कुल को पावन व धन्य कर दिया।

नृत्यत नूपुर बाँधिके; गावत ले करतार।
देखत ही हरि में मिली; तृन सम गति संसार॥

अपने अगले दिन के प्रवचन में स्वामी शारदानन्द जी ने
।—पद्मपुराण पाताल खण्ड में श्री अम्बरीष जी ने देवर्षि
रदजी से पूछा है कि किस मनुष्य को कब, कहाँ, कैसी और
स प्रकार की भक्ति करनी चाहिये ? नारदजी ने महाराजा
बरीषजी के प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया—मानसी,
चिकी, कायिकी; लौकिक, वैदिकी तथा आध्यात्मिक आदि
क प्रकार की भक्ति है—

मानसी—ध्यान, धारणा, बुद्धि तथा वेदार्थ के चिंतन द्वारा
वान को प्रसन्न करने के लिये की जाती है।

वाचिकी—वेदमन्त्रों के उच्चारण, मन्त्रजाप व स्तोत्रों के पाठ
भगवान की प्रसन्नता के लिये किये जाते हैं।

कायिकी—व्रत, उपवास, नियमों का पालन व इन्द्रियों के
म द्वारा की जानेवाली आराधना कायिक भक्ति है।

लौकिक—पाद्य, अर्घ्य आदि उपचार, नृत्य, वाद्य, गीत,
गरण तथा पूजन आदि द्वारा भगवान की सेवा करना।

वैदिकी—ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद के जप, संहिताओं के
ध्ययन, हविष्य की आहुति, तथा यज्ञ-योगादि के द्वारा की जाने
ली उपासना।

आध्यात्मिक—इसका साधक सदा अपनी इन्द्रियों को संयम
रखकर प्राणायामपूर्वक ध्यान करता है। वह ध्यान में देखता
कि भगवान का मुखारविन्द अत्यन्त तेज से प्रदीप्त होरहा है।
गवान के नेत्रों से निकली हुई ज्योति हृदय की सम्पूर्ण जलन
ो मिटा रही है।

卐 शिवजी ने भक्ति का स्वरूप बतलाया 卐

पद्मपुराण उत्तरखण्ड में शिवजी ने पार्वतीजी को भक्ति का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है कि भक्ति तीन प्रकार की होती है—१. सात्विकी २. राजसी ३. तामसी।

१. सात्विकी—कर्मबन्धन का नाश करने के लिये भगवान के प्रति आत्मसमर्पण बुद्धि रखना।

२. राजसी—विषयों की इच्छा रखकर अथवा ऐश्वर्य व यश की प्राप्ति के लिये पूजा की जाती है।

३. तामसी—अहंकार सहित, दूसरों को दिखाने के लिये, ईर्ष्यावश या दूसरों का संहार करने की इच्छा से जो किसी देवता की भक्ति की जाती है।

जैसी भक्ति की जाती है वैसी गति प्राप्त होती है। सात्विकी उत्तम है, राजसी मध्यम हैं; तामसी कनिष्ठ है। मोक्षफल के इच्छुकों को श्रीहरि की उत्तम भक्ति ही करनी चाहिये।

स्वामी जी की बात सुनकर एक भक्त ने कहा—महाराज जी! कुछ प्रेमियों की इच्छा है कि आप हमें किसी शिवभक्त की कथा सुनाने की कृपा करें।

स्वामी शारदानन्द जी ने मुस्कराते हुए कहा—अच्छी बात है; हम कल के सत्संग में आप लोगों को शिव भक्त मार्कण्डेय जी की कथा सुनायेंगे। कल सोमवार का पवित्र दिन व पुण्य तिथि एकादशी भी है। आप लोग समय से आधा घण्टे पहले आने की कृपा करना।

पद्मपुराण उत्तरखण्ड में लिखा है कि मृकण्ड मुनि ने अपनी त्नी सहित पुत्र प्राप्ति के हेतु भगवान शिव को प्रसन्न करने : लिये घोर तपस्या की। शिवजी ने मुनी को दर्शन दिये और हा—सद्गुण रहित, कुरूप, लम्बी आयु वाला पुत्र चाहते हो। गुणवान अल्प आयु वाला। इस पर ऋषि ने कहा—गुणवान ल्प आयु वाला पुत्र ही श्रेष्ठ है। शिवजी ने उन्हें सोलह वर्ष की ायु वाला बालक होने का वरदान दिया। इसी बालक का नाम ार्कण्डेय था।

पिता ने बालक को महामृत्युंजय नामक मन्त्र बचपन में ही याद करा दिया जिसे बालक मार्कण्डेय मन ही मन में जपा करता था। जब मार्कण्डेय की आयु का सोहलवाँ साल चल रहा था तब मृकण्ड मुनि के आश्रम में एकबार सप्तऋषिगण पधारे। बालक मार्कण्डेय ने ऋषियों की बहुत सेवा की। सेवा से प्रसन्न होकर ऋषियों ने मार्कण्डेय को दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया। महर्षि वशिष्ठ ने ऋषियों से कहा—

इस बालक की आयु तो तीन दिन ही शेष रह गई है। इस बालक की मृत्यु होगई तो हमारे आशीर्वाद भी झूठे हो जायेंगे। अतः उस बालक को अपने साथ लेकर सप्तऋषि ब्रह्माजी के पास गये और बालक की आयु बढ़ने का उपाय पूछने लगे। ब्रह्माजी ने कहा—भाग्य तो शिवजी ही बदल सकते हैं। ब्रह्माजी की बात सुनकर सप्तऋषियों ने मार्कण्डेय को दक्षिण समुद्र के तट पर शिवलिंग की स्थापना करके आराधना करने को कहा।

अपने माता पिता की आज्ञा लेकर मार्कण्डेय दक्षिण समुद्र तट पर शिवलिंग बनाकर उसकी आराधना करने लगे। समय पर काल आ पहुंचा। जब काल मार्कण्डेय को पकड़ने लगा तब मार्कण्डेय ने काल को फटकारते हुए कहा—मैं महामृत्युंजय मन्त्र का जप करते हुए भगवान शिव की पूजा कर रहा हूं। मैं पूजा पूरी करूं तब तक तुम ठहर जाओ।

काल ने कहा—मैं एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। तुम्हारी आयु पूरी हो चुकी है। इतना कह कर काल मार्कण्डेय पर आक्रमण करने लगा। मार्कण्डेय दौड़कर शिवलिंग से चिपट गया। जब काल मार्कण्डेय के शरीर से प्राण निकालने लगा तब उसी लिंग में से महादेव जी प्रगट होगये। उन्होंने काल की छाती में लात मारी और डाँटते हुए कहा—मूर्ख! मार्कण्डेय मेरी शरण में है। मैं इसे अमर बनाता हूं। महादेव जी के चरण प्रहार से भयभीत होकर काल भाग गया। मार्कण्डेय ने भगवान शिवजी की मृत्युंजय स्तोत्र से स्तुति की।

युवा अवस्था प्राप्त होने पर मार्कण्डेय जी हिमालय की गोद में बद्री वन में जाकर तप करने लगे। इनके तप से प्रसन्न होकर भगवान नारायण ने इनको दर्शन दिया और वरदान माँगने को कहा। तब मार्कण्डेय जी ने हाथ जोड़कर यही कहा—भगवन्! मैं आपकी माया को देखना चाहता हूं। भगवान तथास्तु कहकर चले गये।

एक दिन मार्कण्डेय जी ने देखा कि दिशाओं को काले काले मेघों ने ढक लिया है। थोड़ी ही देर में मूसल के समान मोटी मोटी धाराओं से जल बरसने लगा। चारों ओर से उमड़ते हुए समुद्र बढ़ आये। समस्त पृथ्वी प्रलय के जल में डूबगई। मुनि महासागर में विक्षिप्त की भांति तैरने लगे। भूमि, वृक्ष, पर्वत, सब जल में डूब गये। सब ओर घोर अन्धकार होगया। सूर्य, चन्द्र, तारों का कुछ पता नहीं था। बहुत व्याकुल होकर ऋषि ने भगवान का स्मरण किया।

भगवान का स्मरण करते ही मार्कण्डेय जी ने अपने सामने जल में एक बहुत बड़ा वट-वृक्ष देखा। वट के एक बड़े पत्ते पर एक सुन्दर बालक को अपने पैर का अंगूठा चूसते हुए देखा। ये भगवान बालमुकुन्द थे। मुनि उस बालक के पास गये और उसको उठाने की कोशिश करने लगे। पास पहुँचते ही उस बालक की स्वांस से खिंचे हुए मुनि विवश होकर उसके उदर में चले गये।

बालक के पेट में मार्कण्डेय जी ने सूर्य, चन्द्र, तारे, पर्वत, नदियाँ, वृक्ष, व सभी प्रकार के प्राणियों से भरी हुई पृथ्वी को देखा। वहाँ पुष्प भद्रा नदी के तट पर अपना आश्रम भी देखा। ये सब देखने में उन्हें बहुत समय बीत गया। उन्होंने घबराकर नेत्र बन्द कर लिये। नेत्र बन्द करते ही वे बालक के स्वांस के साथ फिर बाहर आगये। बाहर उन्होंने फिर उसी सुन्दर बालक को अपने सामने देखा। मुनि ने उस बालक को इस सब दृश्य का रहस्य पूछना चाहा कि सहसा वह अदृश्य होगया।

मुनि ने देखा कि वे तो अपने आश्रम के निकट बैठ संध्या कर रहे हैं। वह बालक, वह वट-वृक्ष; वह प्रलय-समुद्र आदि कुछ भी नहीं है। भगवान ने कृपा करके अपनी माया का स्वरूप बतलाया है। यह बात जान कर मुनि को बड़ा ही आनन्द हुआ। वे समझ गये कि ये सारा संसार सर्वेश्वर परमेश्वर के भीतर ही है। उन्हीं से सृष्टि का विस्तार होता है और फिर उन्हीं में सृष्टि लय हो जाती है।

उसी समय उधर से माता पार्वती सहित भगवान शंकर निकले। मुनि ने शिव-पार्वती के चरणों में प्रणाम किया। भक्त-वत्सल भगवान शंकर जी ने उनसे वरदान माँगने को कहा। मुनि ने प्रार्थना की—आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो "अविचल भक्ति" का ही वरदान देने की कृपा करें। आप में मेरी स्थिर श्रद्धा रहे तथा भगवान के भक्तों के प्रति मेरे मन में सदा अनुराग रहे। शंकर जी ने तथास्तु कहा और पुराण रचने को कहा। मार्कण्डेय पुराण के उपदेशक यही मार्कण्डेय मुनि हैं। बोलो शंकर भगवान की जय।

एक प्रेमी ने स्वामी शारदानन्द जी को महामृत्युंजय मंत्र सुनाने की प्रार्थना की तब उन्होंने इस प्रकार उच्चारण किया—

ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥
ॐ स्वः भुवः भूः सः जूं हौं ॐ

शिव भक्त मार्कण्डेयजी की कथा सुनाने के बाद स्वामी शारदा-न्द जी महाराज ने कहा—जो मातायें अचल सुहाग चाहती हैं उन्हें सदा माता पार्वती जी की पूजा करनी चाहिये। गौरी-पूजन महिमा जानने के लिये हम आपको एक कथा सुनाते हैं—

कुमार चिरायु व कुमारी मंगला :—

श्रुतकीर्ति नाम के एक राजा के अति सुन्दर पुत्र हुआ। उस पुत्र का हाथ देखकर तथा जन्म समय पर विचार करके एक विद्वान ज्योतिषी ने राजा से कहा कि आपका यह बालक अल्प-आयु वाला है। बीस वर्ष की आयु में सर्प के काटने से इसकी मृत्यु हो जायेगी। फिर भी आप इसका नाम चिरायु रखें। ज्योतिषी की बात मान कर राजा ने अपने पुत्र का नाम चिरायु ही रखा।

जब चिरायु अठारह साल का हुआ तब उसकी माता ने अपने पुत्र को मामा के साथ भगवान शंकर की प्रिय नगरी काशी में भेज दिया। जिस समय मामा के साथ चिरायु काशी नगरी की ओर जा रहा था उस समय मार्ग में 'आनन्द' नामक नगर पड़ा। आनन्द नगर के राजा वीरसेन की पुत्री राजकुमारी मंगला अपनी सखियों के साथ बाग में खेल रही थी। ये दोनों मामा भानजे उसी बाग में विश्राम कर रहे थे।

किसी बात पर नाराज होकर एक कन्या ने मंगला को राँड कह दिया। राजकुमारी उससे क्रोधित होकर बोली—मेरे परिवार में कोई भी विधवा नहीं हो सकती। मैं पार्वती माता का पूजन करती हूँ। मेरे साथ जो विवाह करेगा उसकी आयु कम होगी तो भी बढ़ जायेगी।

राजकुमारी की यह बात मामा भानजे ने भी सुन ली थी। उस राजकुमारी का विवाह राजा दृढ़वर्मा के पुत्र से होनेवाला था। राजा दृढ़वर्मा का पुत्र सुकेतु बहरा, कुरूप व मूर्ख था। राजा ने अपने मन्त्री को आज्ञा दी थी कि वह एक दिन के लिये किसी सुन्दर नौजवान को भाड़े का वर बनाकर ले आवे।

मन्त्री ने बगीचे में चिरायु को देखा तो उसके मामा से कहा कि एक दिन के लिये आपके भानजे को मेरे साथ भेज दीजिये। हमारा कार्य पूर्ण हो जायेगा और आपका बड़ा उपकार होगा। आप चाहें तो मैं आपको इस कार्य के लिये पाँच हजार रुपये भी देने को तैयार हूं। चिरायु के मामा ने मन्त्री की बात सहर्ष स्वीकार करली।

मन्त्री चिरायु को अपने साथ ले गया। खूब धूमधाम से चिरायु का विवाह राजकुमारी मंगला से हुआ। रात्रि में शिव-पार्वती की प्रतिमा के पास ही वर-वधु ने शयन किया। उसी दिन चिरायु की आयु पूरी होने वाली थी। अतः आधी रात के समय एक काला नाग उसे डसने आया।

संयोग से राजकन्या की आँख खुल गई। पहले तो वह डरी किन्तु बाद में उसने धैर्य धर कर नाग का पूजन किया। दूध का कटोरा पीने के लिये सर्प के आगे रख कर हाथ जोड़ कर माता पार्वती से प्रार्थना करने लगी—हे पार्वती माता! मैंने सदा आपका व्रत व पूजन किया है। इस सर्प से मेरे पति की रक्षा करो। उसी समय वह सर्प दूध पीकर वहाँ से चला गया।

सर्प के चले जाने पर मंगला ने चिरायु को जगाया। चिरायु ा—हे राजकुमारी! मैं तो भाड़े का वर हूं। अतः मैं तुम्हारा ां नहीं कर सकता। आज दिनभर से मैंने भोजन नहीं किया भूखे आदमी को कोई भी बात अच्छी नहीं लगती।

चिरायु की बात सुनकर राजकुमारी उसके लिये मिष्ठान्न ई और उसको भोजन कराया। भोजन करने के बाद चिरायु ..र सोगया। प्रातः काल होने से पहले ही उसका मामा जब उसे लेने आया तब अपने माता पिता से सब बात कहकर उन दोनों को गुप्त रूप से महल में ठहरा लिया।

प्रातःकाल होने पर वर पक्ष वाले सुकेतु को साथ लेकर कन्या को विदा कराने आये तब उस काले कुरूप व मूर्ख सुकेतु को देखते ही राजकुमारी ने कहा—ये मेरा पति नहीं है। जब वर पक्ष वाले झगड़ा करने लगे तब मंगला के पिता राजा वीरसेन ने चिरायु को लाकर सामने खड़ा कर दिया। वर पक्ष वाले चुपचाप वापिस चल दिये।

चिरायु महाराजा श्रुतकीत्ति का पुत्र है यह बात ज्ञात होने पर वीरसेन ने अपनी पुत्री मंगला को अनेक प्रकार के वस्त्र, आभूषण, सेवक व सेना आदि वस्तुएँ दहेज में देकर प्रसन्नता पूर्वक विदा किया। विवाह करके चिरायु मंगला सहित अपने देश पहुँचा। चिरायु के माता पिता तो समझे कि हमारा पुत्र मर गया होगा।

अब पत्नी सहित पुत्र को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। जब सब समाचार पूछने लगे तब बहू ने बतलाया कि मैं सदा माता पार्वती की पूजा व व्रत करती हूं। पार्वती माता की कृपा से ही मेरा सौभाग्य अटल होगया है।

राजकुमार चिरायु व राजकुमारी मंगला की कथा सुनाकर स्वामी शारदानन्द जी ने कहा कि जो मातायें अपनी सन्तान की सुरक्षा व कल्याण चाहती हों उन्हें शुक्रवार का व्रत व पार्वती माता का पूजन करना चाहिये। इस सम्बन्ध में हम आपको एक प्राचीन कथा सुनाते हैं—

किसी समय पांडव वंश में एक सुशील नामक राजा था उसकी रानी का नाम सुकेशी था। वह अत्यन्त रूपवती थी किन्तु दोनों राजा रानी सन्तान के दुःख से अत्यन्त दुःखी थे। एक बार रानी को एक युक्ति सूझी—वह प्रति मास अपने पेट पर कपड़ा बाँध कर गर्भिणी होने का स्वाँग करने लगी और साथ ही गर्भिणी स्त्री की तलाश भी करती रही।

संयोगवश रानी ने अपने पुरोहित की स्त्री को गर्भवती देखा। अब क्या था उसका काम बन गया। उसने दाई को बुलाकर धन का लालच दिया और दाई ने भी पुरोहित के बालक को लाकर देना स्वीकार कर लिया। इधर राजा ने भी रानी को वास्तव में गर्भवती समझकर उसके सभी संस्कार करवाये।

पुरोहित की स्त्री का पहला ही अवसर था। वह बेचारी कुछ नहीं जानती थी। दाई ने फुसलाकर उसकी आंखों को पट्टी बाँध दी। उसके जो पुत्र हुआ उसको तो रानी के पास भेज दिया और प्रसूता की आँखें खोलकर एक मांस पिंड दिखा दिया (जिसे दाई साथ लाई थी) और बोली—चलो भगवान की दया से तुम्हारी जान तो बच गई। दाई की बात पर पुरोहित की स्त्री को विश्वास नहीं हुआ। वह समझ गई कि दाई ने उससे छल किया है।

रानी ने पुत्र जन्म की बात सर्वत्र फैलादी। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। अनेक प्रकार के दानपुण्य किये तथा पुत्र का नामकरण संस्कार करवाकर उसका नाम प्रियव्रत रखा। धीरे धीरे प्रियव्रत बड़ा होने लगा।

उधर पुरोहित की स्त्री शुक्रवार का व्रत रखती व माता पार्वती का पूजन किया करती थी सो उसने माता पार्वती से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे माता! मेरा बालक जहाँ कहीं भी हो; उसकी रक्षा करना और मेरे बेटे को मुझ से जरूर मिलाना।

काल वश कुछ समय बाद राजा सुशील की मृत्यु होगई। अपने पिता की हड्डियों को गंगाजी में डालने व पिंड आदि क्रिया करने मन्त्री को साथ लेकर प्रियव्रत गया के लिये रवाना हो गया। रास्ते में एक नगर पड़ा। मन्त्री सहित प्रियव्रत उस नगर में एक गृहस्थ के यहाँ ठहरा।

इस गृहस्थ के घर जब भी कोई बालक जन्म लेता था तब उसको जन्म की पाँचवीं रात को कोई पिशाचिनी उठाकर ले जाती। आज भी पाँचवीं रात थी। बालक को लेने पिशाचिनी आई तब वहाँ पार्वती माता मौजूद थीं। उसने पिशाचिनी को कहा—घर के दरवाजे के बीच प्रियव्रत सो रहा है। उसे लाँघ कर मत जाना। पार्वती से भय मान कर पिचाशिनी चली गई।

प्रातःकाल घरवालों ने जब पुत्र को जीवित देखा तब बड़े प्रसन्न हुए और प्रियव्रत को कहा—आप जरूर कोई महान पुण्यात्मा है। आपकी कृपा से ही हमारा बालक बच गया है। कृपा करके कुछ दिन यहाँ निवास करिये।
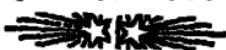
एक सप्ताह तक उस नगर में उसी गृहस्थ के घर प्रियव्रत ठहरा रहा। एक दिन रात्रि में वही पिशाचिनी फिर आई। उस समय प्रियव्रत जग रहा था। पिचाशिनी ने पार्वती जी से पूछा—हे देवी! तुम इस प्रियव्रत की इस तरह रात दिन रक्षा क्यों करती हो?

पार्वती माता ने कहा—इसकी माता शुक्रवार का व्रत करती है और मेरी पूजा करती है। इसकी माता ने जो पुरोहित की स्त्री है मुझसे प्रार्थना की थी कि मेरा बालक जहाँ भी हो; उसकी रक्षा करना। इसकी माता की भक्ति से प्रसन्न होकर ही मैं इसकी रक्षा करती हूं। मैं प्रियव्रत को अपना पुत्र ही मानती हूं।

प्रियव्रत ने सारी बात सुनली। प्रातःकाल होते ही पहले गया जाकर उसने अपने पिता का पिंडदान किया और फिर कई दिनों तक पैदल चलने के बाद अपने नगर को वापिस आ गया। महलों में पहुँचकर अपनी माता से सब बात कही तब उसकी माता ने भी सब कुछ सच सच बतला दिया।

राजा प्रियव्रत ने पुरोहित व उसकी स्त्री को महल में बुलवाया। उन दोनों के आने पर उनके चरणों में प्रणाम किया और कहा आपही वास्तव में मेरे माता पिता हैं। रानी सुकेशा ने अपने अपराध की क्षमा माँगी। प्रियव्रत ने माता पिता को अपने पास महल में ही रहने की प्रार्थना की। प्रियव्रत की माता बोली—पार्वती माता की कृपा से व शुक्रवार का व्रत रखने से ही मुझे मेरा खोया हुआ पुत्र मिल गया है।

सेठ भगवानदास नियमपूर्वक अपनी पत्नी ·ामदेवी के साथ प्रतिदिन कथा सुनने आया करते थे। कथा सुनने के बाद घर आकर वे उसका मनन भी करते थे। एक दिन उनके मन में यह बात आई कि उनको किसकी भक्ति करनी चाहिये। यह बात जानने के लिये उन्होंने स्वामी शारदानन्द जी को अपने घर भोजन करने के लिये बुलवाया।

जब स्वामी शारदानन्द जी भोजन कर चुके तब भगवानदास जी ने हाथ जोड़कर यही बात पूछी कि महाराज जी ! मेरी अवस्था व गृहस्थ जीवन देखते हुए आप मुझे यह बतलाने की कृपा करें कि मुझे किसकी भक्ति करनी चाहिये ? और कौनसा साधन करना चाहिये ?

स्वामी शारदानन्द जी महाराज ने कहा—सेठजी ! आपको भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति करनी चाहिये। उसके लिये आपको श्रीमद्भगवद्गीता का बारहवाँ अध्याय जो भक्तियोग के नाम से प्रसिद्ध है उसका खूब मनन करना चाहिये और उसी के अनुसार अपने जीवन को भक्तिमय बनाने का अभ्यास करना चाहिये।

इसके साथ ही आपको प्रतिदिन एक अध्याय गीता का पाठ व एक घण्टे श्रीमद्भागवत महापुराण का अध्ययन व २१६०० भगवन्नाम का जाप करना चाहिये। सर्वश्रेष्ठ भगवन्नाम है—

हरे राम हरे राम; राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण; कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

卐 भक्त चार प्रकार के होते हैं 卐

श्री गीताजी में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि मेरे भक्त चार प्रकार के होते हैं—१. जिज्ञासु २. अर्थार्थी ३. आर्त ४. ज्ञानी।

इस समय आपके मन में भगवान को जानने की इच्छा है अतः आप जिज्ञासु भक्त हैं। भगवान की भक्ति करके आप ज्ञानी भक्त बन जाइये क्योंकि ज्ञानी भक्त भगवान को अति प्रिय है।

१. जिज्ञासु भक्त—राजा परीक्षित व पार्वती जी के समान जिसके मन में भगवान के स्वरूप को जानने की जिज्ञासा हो।

२. अर्थार्थी भक्त—ध्रुव जी व विभीषण जी के समान जो धन-सम्पत्ति आदि के लिये भगवान का भजन करता है।

३. आर्त भक्त—द्रोपदी जी व उत्तरा जी के समान दुःख दूर करने के लिये जो भगवान को हृदय से पुकारता है।

४. ज्ञानी भक्त—शुकदेवजी व प्रहलाद जी के समान निष्काम भाव से भगवान का भजन करना। भगवान को सर्वत्र व सर्वशक्तिमान समझ कर निर्भय रहना।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

गीताजी में यह भी लिखा है कि अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हुए, सर्वत्र सब प्राणियों में भगवान को समझकर जो प्राणियों की सेवा अर्थात् उपकार करते हैं उनको भी भगवान की प्राप्ति शीघ्र होती है—

दक्षिण भारत के एक नगर में एकादशी की रात्रि को एक सद्गृहस्थ के घर संकीर्तन हुआ। रात्रि में दो बजे संकीर्तन समाप्त हुआ। एक ६० वर्ष के वृद्ध वैष्णव अपने घर आ रहे थे कि अचानक जोर की बरसात शुरू होगई। वे दौड़कर एक पानवाले की बन्द दुकान के बाहर आकर बैठगये। थोड़ी ही देर में ७० वर्ष की आयु वाले एक वृद्ध वर्षा में भीगते हुए उधर से आ निकले। पहले वाले पुरुष को दया आई और इनको बुलाकर अपने पास बिठा लिया। थोड़ी ही देर में ८० वर्ष के एक और वृद्ध उधर से आ निकले। इन दोनों ने उनको भी अपने पास बुला लिया। जगह कम थी अतः तीनों पुरुष खड़े होकर संकीर्तन करने लगे। प्रातःकाल ठीक पाँच बजे ६० वर्ष के एक अति वृद्ध वैष्णव भी हरि ॐ हरि ॐ कहते हुए उधर से निकले। उनके बदन पर एक फटी पुरानी धोती ही थी जो वर्षा के कारण भीग गई थी। तीनों पुरुषों ने उनको बुलाकर अपने बीच में ले लिया व अधिक प्रेम से संकीर्तन करने लगे। उसी समय सब ने देखा कि उनके बीच में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारी भगवान विष्णु खड़े हैं। भगवान के दर्शन कर तीनों वैष्णव आनन्द में मग्न होगये।

❀ वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीरपराई जाणे रे ❀

दूसरे दिन सत्संग में एक प्रेमी ने प्रश्न किया कि हम भगवान से प्रार्थना करते हैं तो भगवान हमारी प्रार्थना सुनते ही नहीं हैं। इसका क्या कारण है ? उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वामी शारदानन्द जी महाराज ने कहा—

प्रार्थना का सम्बन्ध हृदय से है। हृदय से की हुई प्रार्थना परमेश्वर अवश्य सुनते हैं। सच्ची प्रार्थना वह है जिसमें किसी का अहित न हो। दूसरे का नुकसान करने के लिये जो प्रार्थना भगवान से की जाती है वह तो वास्तव में प्रार्थना ही नहीं है। प्रार्थना का तात्पर्य है—हृदय की पवित्र भावना।

१. एक मकान मालिक हनुमान जी के मन्दिर में जाता है; पेड़ों का प्रसाद चढ़ाता है और कहता है हे हनुमान जी ! मेरे किरायेदार को निकाल दो। वह भाड़ा भी नहीं बढ़ाता है और मकान भी खाली नहीं करता है।

२. एक बहू देवीमाता के मन्दिर में जाकर प्रार्थना करती है—हे देवीमाता मेरा पति मेरी बात मानकर अपने माता पिता को छोड़कर अलग मकान लेले। मेरी ये प्रार्थना तुमने सुनली तो मैं तुमको चुनरी ओढ़ाऊंगी; साल भर तक तेरे मन्दिर में ज्योत जलाऊंगी।

३. एक चोर चोरी करने जाता है तो भैरव जी के मन्दिर में जाकर कहता है—हे भैरूं बाबा ! आज अगर खूब अधिक माल हाथ लगा और पकड़ा नहीं गया तो एक बकरा और एक शराब की बोतल आपके चढ़ाऊंगा ? इस तरह की बातें प्रार्थना नहीं हैं।

महात्मा गाँधीजी ने अहमदाबाद में जब साबरमती आश्रम खोला तब उस आश्रम में रहकर देश की सेवा करने के लिये नागपुर से एक हरिजन परिवार गाँधीजी के पास आगया। गाँधीजी ने उसे आश्रम में जगह दे दी। हरिजन जो उस समय अछूत समझे जाते थे। हेय दृष्टि से देखे जाते थे। अतः आश्रम में सहायता देने वाले लोगों ने गाँधी जी से कहा कि—आप इस हरिजन परिवार को आश्रम में रखेंगे तो हम आश्रम को सहायता देना बंद कर देंगे।

गाँधी जी अपने निश्चय पर डटे रहे। परिणाम ये हुआ कि सबने चन्दा देना बन्द कर दिया। एक दिन एक सेवक ने गाँधी जी से कहा—आश्रम में केवल तीन दिन का ही राशन है। गाँधी जी ने मुस्कराते हुए कहा—मैं राम नाम जपता हूं और परमेश्वर से प्रतिदिन प्रार्थना करता हूं। मुझे परमात्मा पर पूर्ण विश्वास है। वह सदा सत् की सहायता करता है।

इस घटना के दूसरे ही दिन एक काले रंग की मोटर आश्रम के फाटक पर आकर रुकी। उसमें एक सेठजी बैठे थे। उन्होंने गाँधी जी को बुलाया और उनके हाथ में एक बंद लिफाफा देते हुए कहा—मैं आपके आश्रम की कुछ सेवा करना चाहता हूं। गाँधी जी ने धन्यवाद देते हुए वह लिफाफा ले लिया। रुपयों की रसीद लाने के लिए गाँधी जी अपने कमरे में गये। कमरे में आकर उन्होंने लिफाफा खोला—उसमें बीस हजार रुपये थे। गाँधी जी रसीद लेकर बाहर आये। बाहर मोटर नहीं थी। गाँधी जी का सिर श्रद्धा से झुक गया। वे मन में कह रहे थे—ईश्वर ने मेरी प्रार्थना सुनली।

एक प्रेमी ने कहा—महाराज जी! भगवान ने गीता में कहा है कि निन्दा, स्तुति, मान—अपमान, हर्ष—शोक, लाभ—हानि, जय-पराजय, सुख-दुख आदि सब में जो समान रहता है वह भक्त मुझे अति प्रिय है। किन्तु अपना अपमान किसे सहन होगा। उसकी बात सुनकर स्वामी शारदानन्द जी ने कहा—

एक बार महात्मा गाँधी जी रेल के तीसरे दरजे में अपने साथियों सहित चम्पारन आ रहे थे। एक माली जिसने पहले कभी गाँधी जी को नहीं देखा था बड़ी श्रद्धा से गाँधी जी के दर्शन करने चम्पारन जाना चाहता था। उसने गुलाब के फूलों की एक बड़ी सुन्दर माला गाँधी जी को पहनाने को बनाई व २५) रु० देश सेवा में देने के लिये रखे। जब वह रेल गाड़ी में चढ़ा तो संयोगवश उसके हाथ वही डिब्बा लगा जिसमें गाँधी जी व उनके साथी थे। रात्रि के ११ बजे थे; सबको एक-एक सीट पर सोते देखकर इस माली को बहुत बुरा लगा। वह एक लम्बे कद के दुबले पतले बूढ़े आदमी के पास गया और उसके सिर में एक हलकी सी चपत लगाकर बोला—ए बुड्ढे! मुझे भी बैठने दे। तू तो ऐसे सो रहा है जैसे ये गाड़ी तेरे बाप की ही हो। वह बूढ़ा चुपचाप उठकर बैठगया। माली भी उसके पास ही जा बैठा। ये बूढ़ा जिसे माली ने अपमान व तिरस्कारपूर्वक नींद से जगाकर उठा दिया था; हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी ही थे। उन्होंने उस माली से कुछ भी नहीं कहा और उसकी बात का बुरा भी नहीं माना।

माली गाँधी जी के पास बैठकर गुनगुनाने लगा—धन्य धन्य गाँधी जी महाराज दुःखी का दुःख मिटाने वाले। ये शब्द सुनकर गाँधी जी ने उससे पूछा—भैया; कहाँ जा रहे ! वह बोला—अरे बुड्ढे; चुप भी रह। तू क्या करेगा जानकर ? मैं तो गाँधी जी के दर्शन व उनकी पूजा करने को चंपारन जा रहा हूँ। उसकी बात सुनकर गाँधी जी मुस्कराने लगे।

प्रातःकाल ६ बजे रेलगाड़ी चम्पारन पहुँची। हजारों आदमी स्टेशन पर "महात्मा गाँधी की जय" बोल रहे थे। इस माली ने एक आदमी से पूछा—भैया ! मुझे गाँधी जी के दर्शन करने हैं; वे कहाँ पर हैं ? उस आदमी ने कहा—रात भर तुम गाँधी जी के पास में बैठे रहे हो और अब हमसे पूछते हो कि गाँधी जी कहाँ है ?

वह माली इस बात को सुनते ही अत्यन्त लज्जित होगया। उसकी आँखों में आँसू आगये। वह गाँधी जी के चरण पकड़ कर क्षमा माँगने लगा। गाँधी जी ने उसके सिर पर प्रेम से हाथ फेरते हुए कहा—इसमें माफी माँगने की क्या बात है। गाड़ी में बैठने को जगह सभी को चाहिये। माली ने गाँधी जी को माला पहनाई और २५) रु० चरणों में चढ़ा दिये। महात्मा जी मुस्कराते हुए डिब्बे से नीचे उतर गये।

इस तरह महात्मा गाँधी जी ने अनेकों बार तिरस्कार व अपमान सहन किया था। जिसको शरीर का मिथ्या अहंकार नहीं होता है वही मान अपमान में समान रहता है। शरीर के अहंकार को मिटाने के लिये आत्मा को ज्ञान होना बहुत जरूरी है।
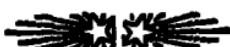
जो भगवान की भक्ति करता है उसे भगवान ज्ञान प्रदान कर देते हैं जिससे उसे किसी प्रकार का भी दुःख नहीं होता। वह प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रहता है। वह समझता है कि जो कुछ हो रहा है वह भगवान की ही इच्छा से हो रहा है और जो कुछ भगवान करते हैं वह जीव की भलाई के लिये ही करते हैं।

एक राजा का मन्त्री भगवान का सच्चा भक्त था। उसे भगवान पर पूर्ण विश्वास था। कभी कोई नवीन घटना होती तो वह कहता—इसमें कोई भलाई जरूर है; भगवान सब कुछ अच्छा ही करते हैं। मन्त्री की ईमानदारी व मधुर व्यवहार से राजा बहुत प्रसन्न था। वह प्रत्येक कार्य मन्त्री की सलाह से ही करता था और प्रत्येक कार्य में मन्त्री को अपने साथ ही रखता था।

एक बार राजा तलवार चलाने के नये दावपेच सीख रहा था कि अचानक राजा की एक उंगली कट गई। राजा की उंगली से खून टपकने लगा। मन्त्री ने अपनी जेब से रूमाल निकाल कर तुरन्त राजा की उंगली में बाँध दिया और राजा से कहा—महाराज! भगवान जो कुछ करते हैं; सब अच्छा ही करते हैं। इसमें भी कुछ अच्छाई ही होगी।

मन्त्री की बात राजा को बहुत बुरी लगी। उसने क्रोधपूर्वक मन्त्री से कहा—कल से आप काम पर मत आना। मुझे ऐसे मन्त्री की जरूरत नहीं है जो दुःख के समय भी कहता है—अच्छा हुआ। राजा की बात सुनकर मन्त्री ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—अच्छी बात है; मैं कल से महल में नहीं आऊँगा। इसमें भी कोई भलाई ही है। यह कहकर मन्त्री अपने घर आगया।

महल में आकर राजा ने वैद्य को बुलाया और वैद्य ने राजा की अंगुली में दवा लगाकर पट्टी बाँध दी। मन्त्री को राजा ने नौकरी से तो निकाल दिया। परन्तु मन्त्री के बिना राजा का मन नहीं लगा। अतः दूसरे दिन संध्या के समय अपना घोड़ा लेकर राजा अकेला ही वन में शिकार करने चला गया। राजा का घोड़ा नया था। वह विपरीत दिशा को चला गया। दिशा भ्रम हो जाने के कारण राजा जंगल में भटक गया।

उस भयानक जंगल में कुछ डाकू लोग रहते थे। जो काली माता की पूजा किया करते थे। उस दिन काली माता को बलि चढ़ाने के लिये डाकुओं ने एक आदमी को पकड़ कर रखा था परन्तु वह आदमी मौका पाकर भाग गया। डाकू लोग उसे ढूंढते हुए जंगल में आये। वह आदमी तो नहीं मिला। पर डाकू लोग उसके बदले राजा को ही पकड़ कर ले गये।

जब राजा की बलि काली माता के सामने चढ़ाने लगे तब पुजारी ने कहा—इस पुरुष की अंगुली कटी हुई है; खण्डित पुरुष की बलि नहीं चढ़ सकती अतः इसे तुरन्त छोड़दो और कोई दूसरा पुरुष ढूंढ़ कर लाओ। डाकुओं ने राजा को छोड़ दिया। और उसे नगर का रास्ता भी बता दिया। प्रातःकाल होने से पहले ही राजा अपने नगर में लौट आया।

महल में आकर राजा अपने मन विचार करने लगा कि मन्त्री सच कहता था—परमात्मा जो करता है; अच्छा ही करता है। मेरी अंगुली कटी हुई नहीं होती तो आज काली माता के सामने गर्दन कट गई होती। भगवान ने दया करके गर्दन की जगह अंगुली ही कटने दी। भगवान ने मेरा भला ही किया है।

प्रातःकाल होते ही राजा स्वयं मन्त्री के घर गया। मन्त्री को सब बात सुनाकर उसने क्षमा माँगी और अपने पद को पुनः ग्रहण करने की प्रार्थना की जिसे मन्त्री ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। कुछ देर आपस में बातचीत करने के बाद राजा ने मन्त्री से कहा कि अंगुली कटने से मेरा तो भला ही हुआ परन्तु नौकरी छूटने से आपका भला किस प्रकार हुआ ?

मन्त्री ने कहा—महाराज ! आप मुझे नौकरी से नहीं निकालते तो सदा की भाँति मुझे अपने साथ शिकार खेलने जंगल में जरूर ले जाते। डाकू लोग आपको तो छोड़ देते और मेरी बली चढ़ा देते। भगवान ने नौकरी छुड़वाकर मुझे यहीं रख दिया। इस तरह भगवान ने मुझ पर भी दया ही की है। मन्त्री की बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और मन्त्री को साथ लेकर पुनः अपने महल में आगया।

ये दृष्टान्त सत्संगी भाई बहनों को व सेठ भगवानदास को बहुत अच्छा लगा। उस दिन शनिवार था और दूसरे दिन था रविवार अतः कथा समाप्त होने के बाद सेठ भगवानदास जी स्वामी शारदानन्द जी के साथ साथ उनके कमरे में गये और प्रार्थना की कि महाराज कल प्रातःकाल ६ बजे मैं अपनी मोटर अपने बेटे राम के साथ आपके पास भेजूंगा सो आप कृपा करके एक घन्टे के लिये घर पर पधारने की कृपा करें मेरे मनमें एक बात है; वह मैं आपसे कल घर पर ही पूछूंगा। कृपा करके जरूर पधारना। स्वामी शारदानन्द जी ने भगवानदास जी की बात स्वीकार करली।

रविवार को ठीक सवा आठ बजे, रामचन्द मोटर लेकर तुलसी निवास पहुँच गया। स्वामी शारदानन्द जी भी तैयार थे अतः ठीक ६ बजे वे भगवानदास जी के घर पर आगये। सेठ भगवानदास जी ने परिवार सहित स्वामी जी के चरणों में प्रणाम किया और स्वामी के गले में पुष्पमाला पहनाई व कुछ फल व दूध भी सामने रखकर ग्रहण करने की प्रार्थना की। स्वामी जी ने केवल एक गिलास दूध ही लिया। उसके बाद जब कमरे में स्वामी शारदानन्द जी व सेठ भगवानदास दो ही जने रह गये तब भगवानदास ने हाथ जोड़ कर स्वामी जी से पूछा—

आप जानते ही हैं कि मेरी वृद्ध अवस्था है। आपने भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति व गीता के बारहवें अध्याय के अनुसार दुःख-सुख में समान रहते हुए भजन करने का जो मार्ग बताया वह मुझे बहुत ही अच्छा लगा। मैं उस पर अवश्य चलूंगा। परन्तु मैं चाहता हूं कि भगवान श्रीकृष्ण एक बार स्वप्न में मुझे दर्शन देने की कृपा करें। आपसंत हैं; संत उपकारी होते हैं। अतः मुझे भगवद्दर्शन शीघ्रातिशीघ्र हों ऐसा उपाय बताने की कृपा करें।

स्वामी शारदानन्द जी महाराज ने नेत्र बन्द करके दो मिनिट प्रभु का ध्यान किया और गम्भीरता पूर्वक बोले—सेठ जी। आपकी ही तरह बहुत से स्त्री-पुरुष हमें पूछा करते हैं कि हमें भगवान के दर्शन कैसे हों ? हम उन्हें उपाय बतलाते हैं तब वे सुन तो लेते हैं पर जैसा हम कहते हैं वैसा करते नहीं हैं। आप भी हमारी बात मानेंगे या नहीं यह हम नहीं जानते फिर भी आपने पूछा है तो बतलाते हैं—

हमारे धर्मशास्त्रों में लिखा है कि सत्य परमेश्वर का ही रूप है। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। सत्य की ही शक्ति से पृथ्वी जगत को अपने ऊपर धारण करती है। सत्य की ही शक्ति से सूर्य सारे जगत को प्रकाशित करता है। सत्य की शक्ति से ही वायु सर्वत्र विचरण करता है। अतः सत्य ही सब कुछ है। भगवान श्री रामचन्द्र जी ने स्वयं अपने मुखारविन्द से कहा है—

निर्मलमन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छलछिद्र न भावा॥
काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरन्तर बस मैं ताके॥

मनुष्य सब कुछ छोड़ देता है पर झूठ बोलना नहीं छोड़ता। संसार में बहुत ही कम लोग (लाखों में एक) ऐसे होंगे जो सत्य का आचरण करते हैं। जब किसी को श्मशान में दाह संस्कार करने के लिये ले जाते हैं तब उसके साथ वाले सभी लोग जोर जोर से पुकारते हैं—राम नाम सत्य है; सत्य बोले गत्त है पर उनमें से कोई भी सदा सत्य नहीं बोलता।

इसके विपरीत अनेकों ऐसे भक्तों को भगवान ने दर्शन दिये हैं जिन्होंने यज्ञ, व्रत, दान व तप आदि कुछ भी नहीं किया। केवल सत्य को ही जीवन भर अपनाये रहे। सत्यवादी का मतलब यह नहीं है कि केवल वाणी से ही सत्य बोले। व्यवहार में भी सत्य का ही पालन करना चाहिये। तन, मन, वाणी की एकता का ही नाम सत्य है।

सत्येन धार्यते पृथ्वी; सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च; सर्वं सत्ये प्रतिष्ठतम्॥

卐 भक्त कबीर जी की सत्यवादिता 卐

भक्त कबीर जी काशी नगरी में रहते थे। उनकी पत्नी का नाम लोई व पुत्र का नाम कमाल था। कबीर जी जुलाहे का काम करते थे। कपड़ा बुनते जाते और भगवन्नाम का जप वाणी द्वारा करते जाते थे। इनके गुरु स्वामी रामानन्द जी महाराज थे। उनके कबीर जी तन, मन, वाणी से सदा सत्य का ही आचरण करते थे। उनके जीवन की एक घटना इस प्रकार है—

एक बार कबीर जी की पत्नी ने एक पंखा अपने हाथ से बनाकर कबीर जी को दिया और कहा कि इस पंखे को बाजार में बेचकर कुछ साग-सब्जी ले आओ। पंखा ब ाने में मुझे दो घण्टे लगे हैं। अतः चार पैसे से कम में नहीं बेचना।

कबीर जी पंखा लेकर बाजार में गये। दिन के ग्यारह बज गये पर कबीर जी को पंखे की कीमत चार पैसे किसी ने भी नहीं दिये। कोई कहता दो पैसे लेलो; कोई कहता अच्छा भाई तीन पैसे लेलो। जब बारह बजे का समय होने लगा तब कबीर जी पंखी सहित घर लौट आये और कह दिया कि इस पंखी के चार पैसे कोई भी नहीं देता है।

कबीर जी का पुत्र कमाल बहुत ही होशियार था। वह पंखी को लेकर बाजार में गया और चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा— चमत्कारी पंखी! कीमत १००) रु० चमत्कारी पंखी! कीमत १००) रु० जब लोगों ने पूछा कि इसमें क्या चमत्कार है तब कमाल इस प्रकार कहने लगा—
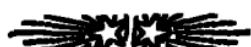
संत महात्माओं ने वैदिक मंत्रों से इस पंखी का निर्माण किया है। ये पंखी जिसके घर में रहेगी उसके घर में चोरी कभी नहीं होगी। बीमार को इस पंखी से हवा करोगे तो वो जल्दी अच्छा हो जायेगा। दिवाली की रात को इस पंखी का पूजन करेगा उसके। घर में लक्ष्मी माता भी तब तक निवास करेगी जब तक वह पंखी रहेगी। पखी को साथ लेकर युद्ध में जायेगा तो अवश्य विजय होगी। व्यापारी दुकान में पंखी रखेगा वो दिन भर दुकान पर ग्राहकों की भीड़ लगी रहेगी। जो माता प्रतिदिन इस पंखी का पूजन करेगी उसका सुहाग अचल रहेगा तथा उसे उत्तम सन्तान की प्राप्ती होगी।

कमाल की चमत्कारी बातें सुनकर एक बड़े धनी व्योपारी ने १००) रु० देकर उससे वह पंखी खरीदली। कमाल रुपयों की थैली लिये व साग-सब्जी लेकर घर पर आया। घर आकर उसने कबीर जी के पास थैली रख दी। कबीर जी ने पूछा—पंखी कितने में बेची ? कमाल ने कहा—मैं चाहता तो १०००) रु० में बेचता किन्तु मुझे ख्याल आगया कि भक्त कबीर जी का बेटा हूं, ज्यादा झूठ बोलना अच्छा नहीं है इसलिये सिर्फ १००) रु० में ही बेचकर चला आया। कमाल की बात सुनकर कबीर जी मन में दुःख हुआ और उन्होंने अपनी पुस्तक "कबीरवाणी" में लिख दिया—

बिनसा वंस कबीर का; उपजा पूत कमाल।
झूँठ कपट को बोल कर; घर ले आया माल॥

इस दोहे को पढ़कर कमाल ने कबीर जी से कहा—पिताजी, आपने तो मेरा नाम ही बदनाम कर दिया। चार पैसे की पंखी को मैंने सौ रुपये में बेचा है अतः मुझे इनाम दीजिये और इस दोहे को पुस्तक में से निकाल दीजिये।

कबीर जी ने कहा—कमाल हर आदमी को ये बात याद रखनी चाहिये कि उसको परमात्मा के सामने अपने कर्मों का हिसाब देना पड़ेगा। परमात्मा ने ये मनुष्य का शरीर ठगी व बेईमानी करके धन इकट्ठा करने को नहीं दिया है। ईमानदारी व सचाई से धंधा करके ईश्वर भजन करने को ही ये मानव शरीर मिला है।

जो लोग ये कहते हैं कि ईमानदारी से धंधा करना बहुत कठिन है; वे झूठ बोलते हैं। ईमानदारी से मनुष्य अपना पेट तो भर सकता है पर मन चाहे ऐश आराम नहीं कर सकता। बेईमानी करके मनुष्य व्यापार में अधिक मुनाफा प्राप्त कर लेता है पर बेईमान का धन उसकी बुद्धि को खराब कर देता है। यही कारण है कि अधिकतर धनी लोग अनेक प्रकार के कुकर्म किया करते हैं।

मांसखाना, शराब पीना, पराई औरतों के पास जाना, जूआ खेलना, आदि अनेकों पाप इस पाप की कमाई के कारण ही होते हैं, पुराने लोग कहा करते है कि—चोरी का माल मोरी में ही जाता है। इसका मतलब ये ही है कि चोर लोग शराब पीते हैं और पेशाब के रास्ते सब शराब मोरी में ही जाती है।

कमाल ने कहा—पिताजी परमात्मा है ही कहाँ ? अगर वो होता और लोगों दिखाई देता तो वे पाप ही नहीं करते। इस पर कबीर जी ने कहा—

कहे कमाल कबीर से साँई कितनी दूर।
ईमानवाले के पास है; बेईमानी से दूर॥

परमात्मा सबको दिखाई नहीं देता यह सच है परन्तु राजा के समान जो उसके नियम को तोड़ता है उसे अवश्य दण्ड मिलता है। मेहनत मजदूरी करके ईमानदारी से पेट भरने वाला गरीब आदमी आधा सेर आटे की रोटी अकेला खा जाता है। उसे धरती पर भी मीठी नींद आ जाती है परन्तु बेईमानी से जो धन जमा करता है उसके शरीर में अनेकों बीमारियाँ व घर में क्लेश रहता है। वह आधा पाव आटा भी नहीं पचा सकता। हजारों रुपये के पलंग पर भी उसे नींद नहीं आती। यह सब पाप का परिणाम है।

कबीर जी की बात का कमाल के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा। कमाल रुपयों की थैली धनी आदमी को वापिस लौटा आया और कबीर जी से क्षमा माँगी। सारे जीवन कबीर जी सत् को अपनाये रहे और अन्त में सत् परमात्मा में ही लीन होगये। उनकी मृत्यु के बाद जब लोगों उनकी लाश पर से कपड़ा हटाया तब सबने देखा कि लाश के स्थान पर केवल गुलाब के फूल हैं।

अतः याद रखो—धनी बाहर से सुखी देखने में आता है भीतर से बहुत दुखी होता है। गरीब आदमी के कपड़े फटे होते हैं, पाँव में जूता नहीं होता, कच्चे मकान में रहता है, रूखा सूखा भोजन करता है, ज्यादा पढ़ा लिखा नहीं होता पर उसके मन में सन्तोष, सदाचार, शांति व आनन्द सदा रहते हैं। वह हृदय का धनी होता है।

एक बात और याद रखनी चाहिये—जो लोग बेईमानी करते हैं वे भी चाहते हैं कि उनके नीचे काम करने वाले मजदूर व क्लर्क ईमानदारी से काम करें। एक चोर यही चाहता है कि उसकी जेब से एक रुपया भी कोई नहीं चुराये। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सच्चाई से सबको प्रेम है।

सत्य परमेश्वर का रूप है इसी से सब सत्य से स्नेह करते हैं। विषय लालसा ही मानव को सत्य से दूर ले जाती है। अतः आप सब कामनाओं का त्याग करके सत् का व्यवहार करते हुए ईश्वर स्मरण करिये।

सत्य की महिमा बताने के बाद स्वामी शारदानन्द जी ने सेठ भगवानदास जी से कहा—जो वस्तु जिसके पास अधिक हो उस वस्तु का त्याग भगवान की प्रसन्नता के लिये करने से भगवत्प्राप्ति शीघ्र होती है। अगर आप सचमुच भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन चाहते हैं तो आपके पास जितना धन है उसका दसवाँ हिस्सा दान कर दीजिये।

भीलिनी के बेर व विदुरानी के केले खाने भगवान उनके पास चले गये पर किसी धनी के पास रसगुल्ले, गुलाब जामुन, बादाम, पिश्ते व केसर कस्तूरी खाने नहीं आये। किसी पारमार्थिक कार्य में गरीब आदमी १) रु० देता है उस कार्य में एक लखपति सेठ भी १) रु० ही देता है तो उसके इस कार्य से भगवान प्रसन्न नहीं होते।

हमको बहुत से धनी लोग मिलते हैं। तीर्थों में जाते हैं, मन्दिरों में जाते हैं, सत्संग में जाते हैं, पूजा पाठ व भजन भी खूब करते हैं पर अपनी शक्ति के अनुसार दान नहीं करते इसी से उनको भगवान के दर्शन नहीं होते। उनका दिली प्रेम अर्थात् हार्दिक अनुराग तो पैसे से ही होता है और अन्तर्यामी भगवान सबके मन की जानते हैं।

जिसके मन में भगवान के दर्शनों की सच्ची इच्छा होती है वह संसार के किसी भी पदार्थ से मोह नहीं रखता। वह तो एकमात्र भगवान को ही चाहता है। मैं आपको एक प्रेम भक्त की कथा सुनाता हूं।

वृन्दावन की कुंजों में एक वृक्ष के नीचे एक सूरदास बाबा रहा करते थे। वे जन्म से ही अंधे थे। वे दिन भर "गोपीजन वल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये" नामक मंत्र का मन ही मन जाप किया करते थे। उनके मन में भगवान के दर्शनों की सच्ची इच्छा थी।

एक दिन भगवान श्यामसुन्दर अपनी सखियों को साथ लिये विहार करने कुंजों में आये। आँख मिचौनी का खेल शुरु हुआ। श्री राधिका जी सूरदास बाबा के पीछे जाकर छिप गईं। इस पर श्रीकृष्ण ने कहा—अरी राधा ? बाबा के पास छिपेगी तो बाबा तेरे पैर पकड़ लेगा। राधा जी ने कहा—बाबा को दिखता तो है ही नहीं फिर पैर कैसे पकड़ेगा ? ये कहकर बिलकुल बाबा के पास ही जाकर खड़ी होगई।

प्रभुकी प्रेरणा से बाबा के मन में आया कि अरे मूरख जगत् जननी श्रीराधिका जी के चरणों पर मस्तक रखकर जनम जनम के पाप मिटाले। बस बाबा ने तुरन्त राधिका जी के दोनों पैर पकड़ लिये और उनको अपने नेत्रों के जल से धो डाला। राधिका जी ने कहा—अरे बाबा, छोड़ मेरे पैर; मैं तो समझती थी कि तू पैर नहीं पकड़ेगा। इतना कहकर राधिका जी सखियों के साथ जमुना के किनारे चली गईं।

राधाजी के पैर की एक पैजनियाँ सूरदास बाबा के पास ही गिर गई थी। सूरदास बाबा के हाथ में वह आगई। बाबा ने उसे अपने कमंडल में रख लिया। थोड़ी ही देर में सखियों सहित राधिका जी पुनः कुंजों में आईं और अपनी पैजनियाँ ढूँढने लगी तब सूरदास बाबा ने कहा—पैजनियाँ तो मेरे पास है पर दर्शन करे बिना नहीं दूंगा।

श्रीराधिका जी ने बाबा के नेत्रों पर अपना हाथ घुमाया और तत्काल बाबा को दोनों नेत्रों से दिखाई देने लगा। राधिका जी ने कहा—अब तो तूने मेरे दर्शन कर लिये; ला मेरी पैंजनियाँ, जल्दी से देदे। बाबा ने कहा—पैंजनियाँ देने को तो तैयार हूं पर इस बात का क्या सबूत है कि आप ही राधिका जी हो ? कल को कोई दूसरी सखी कह दे कि मैं राधिका हूं; तब मैं क्या करूँगा। अतः वे श्यामसुन्दर मुरली मनोहर आकर कह दें कि ये ही मेरी प्रियाजी हैं तो मैं तत्काल पैंजनियाँ दे दूँगा। बाबा की बात सुनकर राधिका जी मुस्कराई और कहा—बाबा तू बहुत चालाक है। तू चालाकी से प्रभु के दर्शन करना चाहता है। अच्छा बाबा। मैं अभी प्रभु को लेकर आती हूं।

कुछ समय बाद राधाजी श्यामसुन्दर को साथ लिये बाबा के पास आगई। बाबा ने प्रभु के पावन चरणों में प्रणाम किया और जी भरकर दर्शन करने के बाद पैंजनियाँ प्रभु के सामने राधिका जी को दे दी। राधिका जी ने कहा श्रीकृष्ण से कहा—बाबा को कुछ वरदान दो। श्रीकृष्ण ने कहा—मेरे भक्त मेरे सिवा कुछ नहीं चाहते। इस पर राधिकाजी ने बाबा से कहा—बाबा तू हम से कोई वरदान माँग ले। पहले तो बाबा ने कुछ नहीं माँगा पर जब राधिकाजी ने हठ किया तब बाबा ने कहा—मैं पहले के जैसे अंधा हो जाऊँ यही वरदान चाहता हूं। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—बाबा बाहर के नेत्रों से तुम्हें ये मिथ्या संसार नहीं दिखेगा पर हृदय से हमारी लीलायें तुम सदा देखते रहोगे। इतना कहकर प्रभु चले गये।

सूरदास बाबा की प्रेममयी वार्ता सुनाने के बाद स्वामी शारदानन्द जी ने कहा—रामचरित मानस में भगवान श्रीराम ने गृहस्थ को इस प्रकार की भक्ति करने को कहा है—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥

समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसइ धनु जैसे॥

अर्थः—माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, और परिवार इन सबके ममता रूपी तागों को बटोर कर और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके द्वारा जो अपने मन को मेरे चरणों में बाँध देता है (सारे सांसारिक सम्बन्धों का केन्द्र मुझे बना लेता है) जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है तथा जिसके मन में हर्ष, शोक और भय नहीं है। ऐसा सज्जन मेरे हृदय में ऐसे बसता है जैसे लोभी के हृदय में धन बसा करता है।

अब हम तुम्हें एक ऐसे भक्त की कथा सुनाते हैं जिसमें यह सब बातें घटित हो जाती हैं।

उज्जैन में दीनबंधुदास नाम के एक गृहस्थ रहते थे। घर में उनकी स्त्री, बड़ा लड़का, उसकी माँ, छोटा लड़का व वे स्वयं; इस प्रकार कुल पाँच प्राणी थे। यह पाँचों ही भगवान के परम भक्त थे। संतों में, संकीर्तन में, व अतिथि सेवा में इन सबका बड़ा अनुराग था। अतिथि को तो यह नारायण का स्वरूप ही मानते थे। इनके सम्पूर्ण कर्म भगवान की प्रसन्नता के लिये ही होते थे।
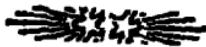
जब कोई भक्त भगवान को पाने के लिये व्याकुल होता है तब भगवान भी उसे दर्शन देने के लिये व्याकुल हो जाते हैं। भगवान इस परिवार को दर्शन देने के लिये एक संन्यासी के वेप में उज्जैन पधारे। भगवान की प्रेरणा से दीनबंधुदास के बड़े बेटे को प्रातःकाल ६ बजे एक जहरीले सर्प ने काट लिया था। सर्प के काटते ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। सारा परिवार शोक सागर में डूब गया। दुःखी परिवार को रोने का भी अवकाश नहीं मिला कि इसी समय द्वार पर पहुँचकर संन्यासी महाराज ने आवाज लगाई—

'नारायण हरि'।

दीनबंधुदास ने नेत्र पोंछे और द्वार पर आकर वृद्ध संन्यासी के चरणों में प्रणाम किया। सन्त ने कहा—मैं बहुत भूखा हूं। महात्मा जी को एक आसन पर विराजमान करके दीनबंधुदास घर में आये और परिवार वालों को बोले—बाहर एक भूखे संन्यासी भोजन माँग रहे हैं और घर में मरे हुए लड़के की लाश पड़ी है। अब हमें क्या करना चाहिये। परिवार के सभी सदस्यों ने एक मत होकर कहा—मरा प्राणी तो अब लौट नहीं सकता। अतिथि भूखे लौट जायें यह ठीक नहीं है। जिस घर से अतिथि निराश लौट जाता है वह अपने सब पाप वहीं छोड़ जाता है। अतः पहले अतिथि सत्कार होना चाहिये। मृत देह का दाह संस्कार पीछे होगा।

लाश को एक कपड़े में लपेट कर बन्द कमरे में रख दिया गया। सारे घर को गौमूत्र व गंगाजल से धोया गया। सास-बहू ने मिल कर भोजन बनाया। अतिथि भोजन करने को बुलाये गये।

घर में आते ही संन्यासी बाबा ने कहा—मेरा नियम है कि जिस घर में मैं भोजन करता हूं उस घर के सभी लोग मेरे समाने ही बैठकर भोजन करें; तभी मैं भोजन करूंगा। अतः आप सब लोग जल्दी से मेरे साथ ही भोजन करने बैठ जाओ, नहीं तो मैं भोजन नहीं करूँगा।

यह बात सुनकर सब लोग विचार में पड़ गये और एक दूसरे का मुंह देखने लगे। फिर सबने सलाह की कि आज नहीं तो कल भोजन तो करना ही पड़ेगा। भोजन के बिना तो कोई नहीं रह सकता। अतिथि को लौटाना उचित नहीं है। चार थालियों में थोड़ा थोड़ा भोजन परोसकर वे चारों संन्यासीजी के सामने बैठ गये।

सन्यासी बाबा ने कहा—मैंने सुना था कि तुम्हारे दो लड़के हैं अतः तुम्हारा बड़ा लड़का कहाँ है? उसे बुलाओ! उसके आने पर ही मैं भोजन करूँगा। दीनबन्धुदास के नेत्रों में आँसू भर गये। संन्यासी के बार बार पूछने पर उन्होंने सब बातें बता दी। संन्यासी बाबा ने लाश को कमरे से बाहर मँगवाकर स्वयं देखा और रोष पूर्वक बोले—दीनबन्धुदास! तू तो बड़ा ही निर्दयी पिता है। मैं तुझे क्या कहूं? पुत्र की लाश घर में पड़ी है और तू भोजन करने बैठ गया।

दीनबंधुदास ने नम्रतापूर्वक कहा—महाराज! आप तो ज्ञानी हैं। आप ही बताइये इस संसार में कौन किसका पुत्र है और कौन किसका पिता? यह तो एक धर्मशाला है। जगह जगह के यात्री आकर ठहरते हैं। कोई कुछ आगे आता है और कोई कुछ पीछे, सभी को एक दिन मरना है। मेरे पुत्र के दिन पूरे होगये अतः वह चला गया। मेरे दिन पूरे होंगे तब मैं भी चला जाऊँगा। मेरा कोई अपराध हो तो मैं क्षमा चाहता हूँ।

##卐 दुनियाँ तो एक बाजार है । 卐

संन्यासी बाबा अब दीनबंधुदास जी की धर्मपत्नी मालती से कहने लगे—तू कैसी माता है। पुत्र के मरने का तुझे शोक नहीं हुआ। तेरा हृदय कितना कठोर है।

मालती ने कहा—प्रभो आपसे भला मैं क्या कह सकती हूं। जब तक पुत्र जीवित था तब तक मैं उसे अपने प्राणों से भी अधिक स्नेह करती थी पर अब तो वह मेरा कोई नहीं है। शरीर नाशवान है; जो जन्मेगा वह अवश्य ही मरेगा। फिर उसके लिये शोक क्यों किया जाय ? रात को एक वृक्ष पर बहुत से पक्षी बैठते हैं और प्रातःकाल होते ही जहाँ तहाँ उड़ जाते हैं। ऐसे ही प्राणी प्रारब्ध भोगने के लिये कुछ समय के लिये एकत्रं हो जाते हैं। यहाँ का सम्बन्ध तो माया का खेल है।

अब संन्यासी जी ने दीनबंधुदास के छोटे बेटे से कहा—तुम्हारे मन में तो बड़ी कुभावना मालूम होती है। बड़े भाई के मरने पर भी तुम्हें शोक नहीं हुआ। संसार में सभी स्वार्थ के सगे हैं। तू तो हमें बड़ा ही स्वार्थी जान पड़ता है।

बालक ने हाथ जोड़कर कहा—यह संसार एक बाजार है। जितने शरीर हैं वे सब एक प्रकार से दुकानें हैं। माल बिक जाने पर दुकानदार दुकान बन्द करके अपने घर चला जाता है। इसी प्रकार प्रारब्ध पूरा होने पर यह जीव शरीर को छोड़कर चला जाता है। पता नहीं कितनी बार कितने जन्मों में कौन किसका भाई, पुत्र, पिता, मित्र अथवा शत्रु रह चुका है। जन्म से पहले किसी का किसी से कोई नाता नहीं था। इसी प्रकार मरने पर भी कोई नाता नहीं रहता। बीच का सम्बन्ध क्षणिक है।

मरे हुए लड़के की विधवा पत्नी को पास बुला कर संन्यासी बाबा ने कहा—बेटी ! तेरा बर्ताव तो बहुत ही दुःखदायक है। संसार में स्त्री के लिये तो एकमात्र पति ही सर्वस्व है। पति के बिना स्त्री का जीवन किस काम का ? तू भी भोजन करने बैठ गई।

विधवा ने पृथ्वी पर सिर रखकर महात्मा जी को प्रणाम किया और कहा—पिता जी ! आप यह तो बताइये कि माया में पड़े हुए जीव का सच्चा पति कौन है ? उस परम पति परमात्मा को पाने के लिये ही स्त्री लौकिक पति को जगदीश्वर की मूर्ति मानकर उसकी सेवा पूजा व भक्ति करती है।

जब तक भगवान ने अपने प्रतिनिधिरूप पति को मुझे सौंपा था तब तक उन पतिदेव की मैं तन मन से सेवा करती थी। अब परमात्मा ने अपना प्रतिनिधि अपने पास बुला लिया है तो मैं अब साक्षात् परमेश्वर की सेवा करूंगी। मुझे तो सेवा करनी है। भगवान अपनी सेवा करावे या अपने बन्दे की।

यह संसार तो भगवान की नाटक शाला है। वे जिसे जो स्वाँग देकर भेजते हैं उसे वही नाटक करना पड़ता है। अब तक मैं सधवापने का नाटक करती थी अब विधवापने का नाटक करूंगी। वैधव्य तो संन्यास के समान पवित्र है। भगवान ने मुझे भजन करने का अवसर दिया है, मैं शोक क्यों करूं? लौकिक दृष्टि से मुझे रोना चाहिये परन्तु शास्त्र कहते हैं कि मोहवश जो स्त्रियाँ रोती हैं उनके पतियों को परलोक में कष्ट होता है इसलिये मुझे शोक करना उचित नहीं जान पड़ा।

संन्यासी बाबा ने मृत देह के ऊपर लिपटा हुआ कपड़ा हटा दिया। अपने कमण्डल से उस पर जल छिड़का और बोले—बेटा उठो! देखते देखते मृतदेह में जीव लौट आया। वह नींद से जगे की भांति उठ बैठा। अपने सामने संन्यासी का ऐसा प्रभाव देखकर सब चकित होगये।

अब संन्यासी बाबा ने उस ब्राह्मण कुमार से कहा—बेटा! आज इस घर में मैंने स्वार्थपरता का नंगा नाच देखा है तू जिन्हें अपना मानता है। जिनके लिये रातदिन परिश्रम करता है। जो तेरी कमाई पर मौज करते हैं। इन्हें तुझसे तनिक भी प्रेम नहीं है। तुझे मरा हुआ जानकर तेरी लाश को तो एक तरफ रख दिया और सब के सब मेरे साथ भोजन करने बैठ गये। ऐसे निर्दयी घर में तेरा जन्म होना बड़े दुःख की बात है।

संन्यासी की बात सुन कर बड़े लड़के ने कहा—मैं बड़ा भाग्यवान हूँ जो ऐसे ज्ञानवान घर में मेरा जन्म हुआ। भगवान ने दया करके ही मुझे ऐसे कुल में जन्म दिया है। निर्मोही माता, पिता, भाई व पत्नी तो बड़े भाग्य से मिलते हैं। आपकी बात सुनकर मेरी श्रद्धा तो इन लोगों में और भी बढ़ गई है। जब संसार के सभी सम्बन्ध मिथ्या हैं तब कोई किसी के लिये शोक क्यों करे।

अब संन्यासी बाबा आनन्द से पुलकित होकर बोले—तुम सबका ज्ञान, भक्ति, वैराग्य व अतिथि सत्कार देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। तुम सब सुख पूर्वक जीवन बिताकर मोक्ष पद पाओगे। तुम लोगों को कभी कोई दुःख नहीं होगा।

परिवार सहित दीनबंधुदास सन्यासी के चरणों में गिर गये। महात्माजी के चरणों को पकड़कर सब पूछने लगे—आपने मुरदे को भी जिन्दा कर दिया। अतः सच सच बताइये; आप कौन हैं ? जब तक आप नहीं बतायेंगे तब तक हम आपके चरणों को नहीं छोड़ेंगे।

संन्यासी बाबा बोले—तुम अतिथि को नारायण मानकर सदा उसकी सेवा किया करते हो अतः अतिथि के रूप में मैं स्वयं नारायण तुम्हारे यहाँ आया हूं। मैं तुम लोगों को कभी नहीं भूलूँगा। अपने प्रेमियों के हाथ में बिक जाता हूं। तुम सरीखे भक्त मेरे हृदय में हैं।

अंतिम वाक्य सुनते ही पाँचों व्यक्ति चौंक पड़े। संन्यासी के स्थान पर सब ने शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथ में लिये भगवान नारायण को देखा। पाँचों व्यक्तियों का जीवन आज सफल होगया। बोलो—भक्त और भगवान की जय।

निष्काम कर्मयोगी व ज्ञानवान भक्त दीनबंधुदास व उनके परिवार की कथा सुनाकर स्वामी शारदानन्द जी महाराज अपने स्थान पर लौट आये। सेठ भगवानदासजी को भी ये कथा बहुत ही अच्छी लगी। उस दिन से वे भी अनासक्त पूर्वक रहने लगे। हर्ष शोक रहित होकर पहले से दुगना भजन करने लगे। उनके मन में भी भगवद्दर्शन करने की लालसा तीव्र हो उठी।

एक महिने तक कथा करके स्वामी शारदानन्द जी महाराज तुलसी निवास (बंबई से) हरिद्वार को चले गये। जाते समय स्वयं सेठ भगवानदास जी ने अपनी मोटर में स्वामीजी को विराजमान किया। यथा शक्ति सेवा करके गले में पुष्पमाला पहनाई; पुनः बम्बई आने की प्रार्थना की व सभी श्रोता गणों सहित भाव भीनी बिदाई दी।

इस घटना के साल भर बाद एक दिन रविवार की छुट्टी के दिन सेठ भगवानदासजी ने अपने सभी परिवार को सामने बुलाकर प्रेमपूर्वक कहना शुरू किया—मेरा सब कुछ भगवान का ही है। आज से चालीस साल पहले मेरे पास चार हजार रुपये भी नकद नहीं थे। मैं ४) रु० रोज पर दूसरे के यहाँ काम करता था।

भगवान की दया ऐसी होगई कि आज मेरे पास कारखाना, मकान, मोटर व जेवरों के अलावा चालीस लाख रुपये नकद हैं। मैंने भगवान के नाम की माला तो बहुत फेरी है परन्तु भगवान के दिये हुए धन से भगवान की सेवा नहीं की। मेरा मन कहता है कि भगवान धन धर्म करने को देते हैं पर मूर्ख लोग इससे पाप करते हैं।

अब मैं चालीस लाख रुपयों में से चार लाख रुपये भगवान की सेवा में लगाना चाहता हूं। एक लाख रुपये का एक कृष्ण मन्दिर हरिद्वार में गंगा के किनारे बनवाकर मैं वहीं रहकर भजन करना चाहता हूं। मन्दिर की व्यवस्था व खर्च के लिये एक लाख रुपये बैंक में जमा कर देने चाहियें। बाकी दो लाख गोशाला, अनाथालय, अस्पताल व संत सेवा में लगाये जायें।

मेरा जग में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागत है मोर॥

भगवानदास जी की बात सुनकर उनके बड़े बेटे रामचन्द्र ने
ा—पिता जी ! आपने हमें पढ़ाया, लिखाया, हमारी शादी
व हमें धन्धे से लगा दिया। हमारे लिये तो आप ही पिता
मेश्वर हैं। आपने चार लाख रुपये पुण्य कार्य में खर्च करने
ो कहा है परन्तु मेरी इच्छा है कि पाँच लाख रुपये परमेश्वर
ो सेवा में लगाएं। एक लाख रुपया आपको मैं अपने हिस्से में
दने को तयार हूं। पर मेरी एक प्रार्थना है—

आप हमें छोड़कर हरिद्वार न जाएं। आप व माता जी
रिद्वार चले जायेंगे तो हम आपकी सेवा कैसे करेंगे ? जो पुत्र
पेता की सम्पत्ति तो ले लेता है पर उसकी सेवा नहीं करता वह
ाप का भागी होता है। आप बम्बई में दो लाख रुपये का
मन्दिर बनवाकर उसी में अस्पताल, गौशाला, पुस्तकालय व
सत्संग भवन आदि खुलवा दीजिये। मैं भी आपके साथ नित्य
नियम से मन्दिर चला करूंगा। आपके पोते भी भक्त बन जायेंगे।

अपने बेटे रामचन्द्र की बात सुन कर सेठ भगवानदास जी
के नेत्रों में प्रेम के आँसू भर आये। उन्होंने अपने बेटे के सिर
पर आशीर्वाद का हाथ घुमाते हुए कहा—भगवान ऐसी औलाद
सबको दे। फिर रूमाल से आँसू पौंछने के बाद बोले-ऐसे सपूत
की बात कौन पिता नहीं मानेगा। ठीक है; मैं सदा तुम्हारे पास
ही रहूँगा। अब तुम जल्दी से मन्दिर के लिये जमीन खरीदने
की तैयारी करना।

इस बात को एक महिना भी पूरा नहीं हुआ था कि एक
लाख रुपये की जमीन मन्दिर के लिये ले ली गई। जब मन्दिर
बनने लगा तब एक लाख रुपया भगवानदास जी के जवाँई ने
भी इस शुभ काम में दिये और एक लाख रुपया भगवानदास
जी के एक मित्र ने अमेरिका से भेज दिया। इस तरह चार लाख
रुपये मन्दिर में लगाये गये।

जब मन्दिर बन गया तब भगवानदास ट्रस्ट की स्थापना हुई। मन्दिर के पिछले हिस्से में गौशाला खोली गई जिसमें ग्यारह गायें रखी गई। पास की जमीन में अस्पताल खोला गया जिसमें आयुर्वेदिक व एलोपैथिक व होम्योपैथिक दवायें गरीबों को मुफ्त दी जाती थीं। मन्दिर के ऊपरी भाग में पुस्तकालय, सत्संग भवन व संतों के ठहरने को कमरे बनवाये गये।

दूसरे साल जब स्वामी शारदानन्द जी महाराज बम्बई पधारे तब भगवानदास जी एक दिन उन्हें अपने साथ मोटर में बैठाकर मन्दिर दिखाने ले आये। मन्दिर में भगवान श्रीकृष्ण की मनोहर मूर्ति को देखकर स्वामी जी को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे हंसते हुए बोले—सेठ जी! आपने तो यहीं वृन्दावन बना लिया है। भगवानदास जी हाथ जोड़कर बोले-यह सब आप जैसे सन्तों की कृपा है।

अब सेठ भगवानदास जी प्रातःकाल चार बजे नींद से उठते। शौच, दातून व स्नान करने में उनको एक घण्टा लग जाता। मन्दिर मकान के पास ही था। अतः ठीक पाँच बजे प्रातःकाल वे मन्दिर जाते। प्रातः ८ बजे तक वे भगवन्नाम जप करते। उसके बाद एक घण्टे मन्दिर में ही श्री मद्भागवत पुराण सुनते। ठीक ९ बजे भगवान के दर्शन करने व पिता जी को लेने रामचन्द्र मन्दिर आ जाता। घर आकर भगवानदास जी एक गिलास दूध पीते व ११ बजे तक व्यापार सम्बन्धी कागजात देखते। १२ बजे भोजन करके पिता पुत्र दोनों कारखाने चले जाते। शाम को ५ बजे कारखाना बन्द होने के बाद घर आ जाते। स्नान करके ७ से ८ तक मन्दिर में कथा सुनने जाते। फिर घर आकर भोजन करते। कुछ समय अपनी पोती व पोते से विनोद करते। रामदेवी से घर के कामों की बात-चीत करते व ठीक १० बजे सो जाते थे।

दस वर्ष तक भगवानदास जी की दिनचर्या इसी प्रकार चलती रही। एक दिन रात्रि में एक वृद्ध ब्राह्मण ने स्वप्न में भगवानदासजी से कहा—भक्तवर ! कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को प्रातःकाल आप वैकुण्ठ धाम (परम पद) चलने को तैयार रहना।

स्वप्न की यह बात सेठ भगवानदासजी ने स्वामी शारदानन्द जी के पास हरिद्वार में लिखकर भेज दी। स्वामी जी ने उत्तर में लिखा—भगवान की आप पर बड़ी कृपा है। ब्राह्मण के रूप में भगवान नारायण ने ही आपको दर्शन दिये हैं। निश्चय समझिये। कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के दिन प्रातःकाल भगवान आपको लेने स्वयं पधारेंगे। कार्तिक मास के आने में ६ महिने की देर थी। भगवानदासजी ने समस्त परिवार को भी यह समाचार सुना दिया।

कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को मन्दिर में भगवान के दर्शन करके अपने बेटे रामचन्द्र के साथ भगवानदास जी घर आगये। नियमानुसार उन्होंने गौमाता का दूध पिया। दूध पीने के बाद भगवानदास जी की तबियत में कुछ घबराहट पैदा होने लगी। वे तुरन्त अपने कमरे के आँगन पर कुशासन बिछाकर नेत्र बन्द करके बैठ गये। उनके हृदय में मोर मुकुट बंसीधारी भगवान श्रीकृष्ण प्रगट होगये। दर्शनानन्द में मग्न होकर भगवानदासजी मुख से कहने लगे—आनन्द ! आनन्द ! महा आनन्द ! हे प्रभु आपके चरणों में मेरा बार-बार प्रणाम है। उसी समय भगवानदासजी के मुंह से जीवात्मा निकलकर परमधाम को चला गया। उनके पुत्र रामचन्द्र ने उनके गले में माला डाल कर चरणों में अन्तिम प्रणाम किया। स्वामी शारदानन्दजी भी हरिद्वार से आगये थे। उन्होंने भी भगवानदासजी को पुष्पहार पहनाया और बोले—

❀ भक्त अपने भगवान के पास पहुँच गया ❀